लुई ब्रेल का जीवन और क्रांतिकारी आविष्कार

डॉ. वेद प्रकाश वर्मा

ज्ञान का प्रकाश ही मनुष्य को
सुख, सफलता और प्रगति के पथ पर ले जाता है।

लुई ब्रेल का जीवन
और क्रांतिकारी आविष्कार

लेखक की अन्य पुस्तकें

1. 'नीतिशास्त्र के मूल सिद्धांत', अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1977.
2. 'डेविड ह्यूम का दर्शन', राजस्थान हिंदी-ग्रंथ-अकादमी, जयपुर, 1978.
3. 'सम कंटैंपरेरी मैटा-एथिकल थ्योरीज़', दिल्ली विश्वविद्यालय, 1978.
4. 'महात्मा गांधी का नैतिक दर्शन', इंदु प्रकाशन, दिल्ली, 1979.
5. 'लुई ब्रेल - व्यक्तित्व और कृतित्व', रोटरी क्लब,दिल्ली नॉर्थ, 1981.
6. 'समकालीन विश्लेषणात्मक धर्म-दर्शन', हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1982.
7. 'अधि-नीतिशास्त्र के मुख्य सिद्धांत', अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1987.
8. 'दर्शन-विवेचना', हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1989.
9. 'धर्मदर्शन की मूल समस्याएं', हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1991
10. 'भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन में निरीश्वरवाद', अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1999.
11. 'फ़िलॉसॉफ़िकल रिफ्लैक्शन्स', अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2005.
12. 'अरस्तु के नीति-दर्शन की समकालीन प्रासंगिकता', अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2006.
13. 'एक यात्रा स्मृतियों की' (आत्म-कथा), अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008.

इन पुस्तकों में से अनेक पुस्तकों के दो, तीन या चार संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण और इन संस्करणों के बहुत-से अनुमुद्रण भी प्रकाशित हुए हैं जो इनकी विशेष उपादेयता के स्पष्ट प्रमाण हैं।

उपर्युक्त पुस्तकों में से छठी पुस्तक के लिए डॉ. वर्मा को अखिल भारतीय दर्शन-परिषद द्वारा 'स्वामी प्रणवानंद दर्शन पुरस्कार' से सम्मानित किया गया है और उनकी पहली, दूसरी, चौथी तथा सातवीं पुस्तकें उत्तर प्रदेश हिंदी-संस्थान द्वारा पुरस्कृत हो चुकी हैं। उनकी विस्तृत पुस्तक, 'भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन में निरीश्वरवाद' के लिए उन्हें 'के.के. बिरला फाउंडेशन' के प्रतिष्ठित 'शंकर पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया है जो भारतीय दर्शन, संस्कृति एवं कला के क्षेत्रों में गत दस वर्षों के अंतर्गत हिंदी में प्रकाशित सर्वोत्तम कृति पर दिया जाता है और जो इन तीनों क्षेत्रों में सर्वोच्च पुरस्कार है।

ऊपर बताई गई पुस्तकों के अतिरिक्त डॉ.वर्मा ने हिंदी तथा अंग्रेजी में लगभग साठ शोध-पत्र भी लिखे हैं जो दर्शन-विषयक पुस्तकों और पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। अध्यापन तथा लेखन-कार्य के साथ-साथ वे दृष्टिहीनों के कल्याण-क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं जिसके लिए उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

लुई ब्रेल का जीवन और क्रांतिकारी आविष्कार

डॉ. वेद प्रकाश वर्मा
सेवानिवृत्त प्रोफ़ेसर तथा पूर्व विभागाध्यक्ष
दर्शनशास्त्र-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रकाशक:
ऑल इंडिया कन्फैडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड
सैक्टर - 5, रोहिणी, दिल्ली-110085.

प्रथम संस्करण: जनवरी, 2009

©: लेखक

प्रकाशक: ऑल इंडिया कन्फैडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड

मूल्य : 150.00 रु. (एक सौ पचास रुपये)

मुद्रक:
रिलायंस प्रिंटिंग्स, दिल्ली

समर्पण

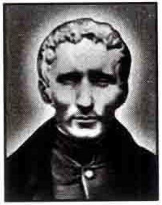

श्रद्धेय लुई ब्रेल को
उनकी द्वि-जन्म-शताब्दी के
पावन अवसर पर सादर समर्पित
जिन्होंने दृष्टिहीनों के लिए शताब्दियों से बंद ज्ञान के द्वार खोले

विषय-सूची

लेखक-परिचय		ix
आभार		xiii
प्राक्कथन		xv

भाग एक
जीवन और व्यक्तित्व

अध्याय 1.	पृष्ठभूमि	3
अध्याय 2.	शैशव और बाल्यावस्था	11
अध्याय 3.	शिक्षा का आरंभ	16
अध्याय 4.	पैरिस के अंधविद्यालय में प्रवेश	19
अध्याय 5.	अध्यापन-कार्य	24
अध्याय 6.	संगीत-साधना	27
अध्याय 7.	अनुकरणीय महान व्यक्तित्व	29
अध्याय 8.	महाप्रयाण और अंतिम श्रद्धांजलि	33

भाग दो
ब्रेल लिपि का आविष्कार और प्रसार

अध्याय 9.	मूल समस्या	41
अध्याय 10.	ब्रेल लिपि की रचना	45
अध्याय 11.	ब्रेल लिपि की मान्यता के लिए संघर्ष	51
अध्याय 12.	ब्रेल लिपि के प्रसार का प्रयास	55
अध्याय 13.	दस बिंदु-प्रणाली और राफ़ीग्राफ़	59
अध्याय 14.	भारती ब्रेल	64
अध्याय 15.	विश्व ब्रेल	70
अध्याय 16.	ब्रेल लिपि का भविष्य	77
सहायक पुस्तकें		88
परिशिष्ट-1	फ्रैंच ब्रेल वर्णमाला	89
परिशिष्ट-2	हिन्दी ब्रेल वर्णमाला	90

लेखक-परिचय

डॉ. वेद प्रकाश वर्मा का जन्म बहावलपुर (पाकिस्तान) में 9 अक्तूबर, 1934 को एक साधारण मध्य वर्गीय परिवार में हुआ था। दुर्भाग्यवश उन्हें नौ-दस मास की अल्पायु में ही 'रोहे' नामक रोग के कारण नेत्र-ज्योति से वंचित होना पड़ा। बाल्यावस्था में उन्होंने संस्कृत के विद्वान एक ब्राह्मण से धार्मिक शिक्षा प्राप्त की जिन्होंने उन्हें 'रामायण', 'महाभारत', 'भगवद्गीता' आदि धार्मिक ग्रंथों का मौखिक ज्ञान कराया। इस धार्मिक शिक्षा ने भविष्य में उन के उत्कृष्ट चरित्र-निर्माण में बहुत महत्त्व पूर्ण योगदान किया।

उपर्युक्त मौखिक शिक्षा के पश्चात विधिवत प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए डॉ. वर्मा को अमृतसर के अंधविद्यालय में भेज दिया गया जहां उन्होंने कुछ हस्त-कलाओं, गणित एवं शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ ब्रेल लिपि के माध्यम से पढ़ना-लिखना सीखा। इस विद्यालय में 'प्रभाकर' परीक्षा की तैयारी करते हुए उन्होंने हिंदी-साहित्य की सभी महत्त्वपूर्ण विधाओं का विशेष रूप से अध्ययन किया जो उन के भावी जीवन तथा उन की उच्च शिक्षा के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ। इसी विद्यालय में श्री 'सोम नाथ कपूर' नामक एक योग्य शिक्षक से उन्हें अंग्रेजी पढ़ने और भविष्य में उच्च शिक्षा प्राप्त कर के किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में प्राध्यापक बनने की प्रेरणा मिली।

डॉ. वेद प्रकाश वर्मा ने माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और दिल्ली में प्राप्त की। उन्होंने दर्शनशास्त्र विषय ले कर 1960 में आगरा विश्वविद्यालय से एम. ए. की परीक्षा उतीर्ण की जिस में उन्होंने प्रथम श्रेणी के साथ-साथ संपूर्ण विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान भी प्राप्त किया। आगरा के 'सेंट जॉन्स कॉलेज' तथा 'आगरा कॉलेज' में लगभग दो वर्ष तक अस्थाई रूप से अध्यापन-कार्य करने के पश्चात उन्हें विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग की प्रतिष्ठित शोध-छात्रवृत्ति प्राप्त हुई और अक्तूबर 1963 में उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र-विभाग में शोध-कार्य प्रारंभ किया। समकालीन नीति-दर्शन में लगभग तीन वर्ष तक शोध-कार्य करने के उपरांत फरवरी 1968 में उन्हें इसी विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त हुई।

उपर्युक्त उपाधि प्राप्त होने से कुछ मास पूर्व सितम्बर 1967 में डॉ. वर्मा ने दिल्ली विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र-विभाग में अध्यापन-कार्य प्रारंभ किया। अक्तूबर 1980 में रीडर और जनवरी 1988 में प्रोफ़ेसर के पद पर उन की नियुक्ति हुई। जून 1988 में वे अपने विभाग के अध्यक्ष बने और लगभग डेढ़ वर्ष तक इसी पद पर

सफलतापूर्वक कार्य करते रहे। अक्तूबर 1989 में विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग ने उन्हें मानविकी में उच्चतम श्रेणी के 'शोध-विज्ञानी' का प्रतिष्ठित पद प्रदान किया और सितम्बर 1994 तक इसी पद पर शोध-कार्य करते हुए उन्होंने 'भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन में निरीश्वरवाद' नामक एक विशद एवं महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना की। अक्तूबर 1999 में वे दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रोफ़ेसर के रूप में सेवा-निवृत्त हुए।

सेवा-निवृत्ति के उपरांत 'अरस्तू के नीति-दर्शन की समकालीन प्रासंगिकता' पर शोध-कार्य करने के लिए डॉ. वर्मा को अक्तूबर 2001 में विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग ने प्रतिष्ठित 'अमेरिटस फ़ेलोशिप' प्रदान की जो उन के विभाग में दी जाने वाली प्रथम 'फेलोशिप' थी।

यहां यह उल्लेखनीय है कि डॉ. वर्मा अध्यापन के साथ-साथ गत चालीस वर्षों से निरंतर लेखन-कार्य भी करते रहे हैं। अब तक उन की निम्नलिखित तेरह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं :- 1. 'नीतिशास्त्र के मूल सिद्धांत', अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1977। 2. 'डेविड ह्यूम का दर्शन', राजस्थान हिंदी-ग्रंथ-अकादमी, जयपुर, 1978। 3. 'सम कन्टैम्परेरी मैटा-ऐथिकल थ्योरीज़', दिल्ली विश्वविद्यालय, 1978। 4. 'महात्मा गांधी का नैतिक दर्शन', इंदु प्रकाशन, दिल्ली, 1979। 5. 'लुई ब्रेल' - व्यक्तित्व और कृतित्व', रोटरी क्लब, दिल्ली नॉर्थ, 1981। 6. 'समकालीन विश्लेषणात्मक धर्म-दर्शनी', हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1982। 7. 'अधि-नीतिशास्त्र के मुख्य सिद्धांत' 'अलाइड पब्लिशर्स', नई दिल्ली, 1987। 8.'दर्शन-विवेचना', हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1989। 9. 'धर्म-दर्शन की मूल समस्याएं', हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1991। 10. 'भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन में निरीश्वरवाद', अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1999। 11. 'फ़िलॉसॉफ़िकल रिफ़लैक्शन्स', अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2005। 12. 'अरस्तू के नीति-दर्शन की समकालीन प्रासंगिकता', अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2006। 13.'एक यात्रा स्मृतियों की', (आत्म-कथा), अलाइड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2008।

इन पुस्तकों में से अनेक पुस्तकों के दो, तीन या चार संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण और इन संस्करणों के बहुत-से अनुमुद्रण भी प्रकाशित हुए हैं जो इन की विशेष उपादेयता के स्पष्ट प्रमाण हैं।

उपर्युक्त पुस्तकों में से छठी पुस्तक के लिए डॉ. वर्मा को अखिल भारतीय दर्शन-परिषद द्वारा 'स्वामी प्रणवानंद दर्शन पुस्कार' से सम्मानित किया गया है और उन की पहली, दूसरी, चौथी तथा सातवीं पुस्तकें उत्तर प्रदेश हिंदी-संस्थान द्वारा

पुरस्कृत हो चुकी हैं। उन की विस्तृत पुस्तक, 'भारतीय तथा पाश्चात्य दर्शन में निरीश्वरवाद' के लिए उन्हें 'के. के. बिरला फ़ाउंडेशन' के प्रतिष्ठित 'शंकर पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया है जो भारतीय दर्शन, संस्कृति एवं कला के क्षेत्रों में गत दस वर्षों के अंतर्गत हिंदी में प्रकाशित सर्वोत्तम कृति पर दिया जाता है और जो इन तीनों क्षेत्रों में सर्वोच्च पुरस्कार है।

ऊपर बताई गई पुस्तकों के अतिरिक्त डॉ. वर्मा ने हिंदी तथा अंग्रेजी में लगभग साठ शोध-पत्र भी लिखे हैं जो दर्शन-विषयक विभिन्न पुस्तकों और पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। अध्यापन तथा लेखन-कार्य के साथ-साथ वे दृष्टिहीनों के कल्याण-क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं जिस के लिए उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

•

आभार

सर्वप्रथम मैं अपने मित्र तथा 'ऑल इंडिया कन्फैडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड' के महासचिव, श्री जवाहर लाल कौल के प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने यह पुस्तक लिखने के लिए मुझ से बार-बार आग्रह किया और इस कार्य के लिए आवश्यक नवीनतम पुस्तकें भी मुझे प्रदान कीं। वस्तुत: उनके इस संपूर्ण प्रयास और सक्रिय सहयोग के बिना मेरे लिए यह पुस्तक लिखना संभव नहीं था।

मैं स्वैच्छिक वाचिका, श्रीमती प्रीति रावल के प्रति भी बहुत कृतज्ञ हूं जिन्होंने इस पुस्तक को लिखने में मेरी काफ़ी सहायता की है। लुई ब्रेल तथा उनकी ब्रेल लिपि से संबंधित मुझे अंग्रेजी में उपलब्ध कराई गई सभी पुस्तकें उन्होंने ही पढ़कर सुनाई हैं जिसके फलस्वरूप मैं इस पुस्तक के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र कर सका हूँ।

इस पुस्तक की टाइप की हुई पांडुलिपि की अशुद्धियों को सुधारने में श्री अनिल कुमार सिंह ने मेरी बहुत सहायता की है जिसके लिए मैं उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस पुस्तक की पांडुलिपि तथा इसके प्रूफ़्स को ध्यानपूर्वक पढ़कर उनकी अशुद्धियां सुधारने का कठिन कार्य श्री प्रभु नारायण ठाकुर ने किया है, अत: मैं उनके प्रति बहुत आभारी हूँ।

मैं श्री नत्थी प्रसाद सुयाल का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने सर्वप्रथम इस पुस्तक के प्रूफ़्स को पढ़कर उनकी अशुद्धियों को दूर करने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत पुस्तक को लिखने के लिए मैंने सी. माइकेल मैलर (C.Michael Mellor) की पुस्तक, 'लुई ब्रेल: ए टच ऑफ़ जीनियस', नॉर्मन वाइमर (Norman Wymer) की लघु पुस्तिका, 'लुई ब्रेल' 'लाल आडवाणी की पुस्तक', 'ऐन ओवरव्यू ऑफ ब्रेल डेवलपमेंट इन इंडिया', जूडिथ एम. डिक्सन (Judith M.Dixon) द्वारा संपादित पुस्तक, 'ब्रेल इन्टु दि नेक्स्ट मिलेनियम', पियर हैनरी (Pierre Henri) की पुस्तक, 'दि लाइफ़ ऐन्ड वर्क ऑफ लुई ब्रेल', 'ऑल इंडिया कन्फैडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड' द्वारा संपादित पुस्तक, 'शिक्षक-प्रशिक्षण लेखमाला' तथा स्वर्ण अहूजा की पुस्तक, 'दृष्टिहीनों का शिक्षण' तथा पुनर्वसन - प्रारंभ व विकास, से पर्याप्त सहायता ली है। मैं इन सभी विद्वान लेखकों के प्रति बहुत कृतज्ञ हूँ, क्योंकि इनकी उपर्युक्त पुस्तकों की सहायता के बिना मेरे लिए यह पुस्तक लिखना संभव नहीं था।

इस पुस्तक के अंतिम दो अध्याय लिखते समय मैंने अपने मित्र और 'ऑल

इंडिया कन्फैडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड' के अध्यक्ष, श्री अजय कुमार मित्तल से लंबी बात-चीत करके कुछ सहायता प्राप्त की थी जिसके लिए मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

अंत में मैं अपनी गृह-सहायिका लता बार्जो का भी धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने नियमित भोजन, वस्त्र आदि मेरी सभी अनिवार्य आवश्यकताओं की ठीक समय पर पूर्ति करके मुझे शांतिपूर्वक यह पुस्तक लिखने का अवसर दिया है।

वेद प्रकाश वर्मा

प्राक्कथन

वर्तमान युग मुख्यतः 'ज्ञान का युग' है और मानव-समाज बहुत द्रुत गति से 'ज्ञानाधारित समाज' बनता जा रहा है। अब मनुष्य इस मूल सत्य को जान गया है कि ज्ञान ही एक ऐसी अमूल्य निधि है जिसके द्वारा वह बड़ी-से-बड़ी सफलता प्राप्त कर सकता है और अविश्वसनीय तथा चमत्कारी प्रतीत होने वाले कार्य भी संपन्न कर सकता है। वस्तुतः ज्ञान मनुष्य को आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता एवं आत्म-सम्मान की भावना प्रदान कर सकता है और इन्हीं गुणों के फलस्वरूप उसे वह सब कुछ मिल सकता है जो उसके जीवन को सार्थक, सुखमय, समृद्ध तथा सफल बनाता है। इसी कारण ज्ञान की तुलना प्रकाश से और अज्ञान की अंधकार से की जाती है।

यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि आखिर 'ज्ञान' क्या है और कैसे प्राप्त होता है। सामान्य तथा सरल भाषा में 'ज्ञान' का अर्थ है ऐसी बातों अथवा ऐसे विषयों की सही जानकारी जिसके द्वारा व्यक्ति का सर्वतोमुखी विकास होता है - अर्थात्, वह भौतिक, मानसिक, बौद्धिक और नैतिक दृष्टि से उन्नति करता है। इस ज्ञान की प्राप्ति का एकमात्र मार्ग है शिक्षा जो मनुष्य को पढ़ने-लिखने में सक्षम बनाती है और इस प्रकार उसके लिए अपार प्रगति तथा महान सफलता के द्वार खोलती है। जो व्यक्ति ज्ञान प्रदान करने वाली इस शिक्षा से वंचित रह जाता है उसके लिए उन्नति एवं सफलता के सारे द्वार बंद हो जाते हैं और उसका संपूर्ण जीवन अंधकार में डूब जाता है।

शताब्दियों से मानव-समाज में दृष्टिहीन व्यक्तियों की यही दुःखद और दयनीय स्थिति रही है। कुछ थोड़े-से अपवादों को छोड़कर सामान्यतः शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ होने के कारण वे समाज की दृष्टि में नितांत 'असहाय', 'बेचारे' तथा 'बेकार' समझे जाते रहे हैं और इसी लिए उनके जीवन को व्यर्थ मानकर उनकी घोर उपेक्षा की जाती रही है। समाज की इस उपेक्षा के परिणामस्वरूप प्राचीन युग तथा मध्य युग में भिक्षावृत्ति ही शताब्दियों से दृष्टिहीनों की जीविका का मुख्य साधन रह गया था।

जिन महापुरुषों ने शिक्षा द्वारा दृष्टिहीन व्यक्तियों की उपर्युक्त दुःखद स्थिति को दूर करने का सफल प्रयास किया है और उनके अंधकारमय जीवन में ज्ञान की अमिट ज्योति जलाकर उनके जीवन-पथ को आलोकित किया है उनमें लुई ब्रेल का नाम सर्वप्रमुख है। उन्होंने ही ब्रेल लिपि के क्रांतिकारी आविष्कार द्वारा दृष्टिहीनों को पढ़ने-लिखने में समर्थ बनाकर सभी प्रकार की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के योग्य बनाया और इस तरह उन्हें अज्ञान के उस गहन अंधकार से बाहर निकलने का मार्ग

दिखाया जो युगों से उनके संपूर्ण जीवन में छाया हुआ था। उनकी इस चमत्कारपूर्ण ब्रेल लिपि के माध्यम से दृष्टिहीन व्यक्ति न केवल कुशलतापूर्वक पढ़-लिख सकते हैं, अपितु ऐसे अन्य बहुत-से कार्य भी कर सकते हैं जो दृष्टिवान मनुष्य सामान्य लिपि की सहायता से करते हैं। इस तरह ब्रेल लिपि ने दृष्टिहीनों को ज्ञान के प्रकाश के साथ-साथ सामाजिक प्रतिष्ठा, आत्म-विश्वास तथा निजी जीवन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी प्रदान की है जिस से उन्हें समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त हुआ है।

संभवत: आप जानते ही होंगे कि अगले साल 4 जनवरी, 2009 को क्रांतिकारी ब्रेल लिपि के महान आविष्कारक लुई ब्रेल का जन्म हुए दो सौ वर्ष पूरे हो जाएंगे। उनकी इस द्वि-जन्म-शताब्दी को धूम-धाम से मनाने के लिए केवल भारत में ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व में बहुत-से कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। हमारी संस्था, 'ऑल इंडिया कन्फैडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड' ('A.I.C.B.') ने भी इस संबंध में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों का आयोजन किया है। सामान्य लिपि और ब्रेल में एक ही साथ इस पुस्तक का प्रकाशन भी इन्हीं कार्यक्रमों में से एक है।

प्रस्तुत पुस्तक को दो भागों में विभाजित किया गया है जिनमें से प्रथम भाग में लुई ब्रेल के जीवन तथा व्यक्तित्व और द्वितीय भाग में ब्रेल लिपि से संबंधित कुछ प्रमुख समस्याओं की सविस्तार विवेचना की गई है। प्रथम भाग के पहले अध्याय, 'पृष्ठभूमि' में कुछ विस्तार से उन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है जिनमें लुई ब्रेल का जन्म हुआ था और उन्हें अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ा था। अगले पांच अध्यायों में उनके जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण पक्षों - शैशव, बाल्यावस्था, शिक्षा, संगीत-साधना तथा अध्यापन-कार्य - का संक्षेप में विवेचन किया गया है। इस भाग के अंतिम दो अध्याय लुई ब्रेल के महान व्यक्तित्व और उनके प्रति विश्व की श्रद्धांजलि से संबंधित हैं।

पुस्तक के दूसरे भाग में ब्रेल लिपि की रचना, उसकी मान्यता के लिए संघर्ष, उसके प्रसार एवं प्रचार के प्रयास, भारती ब्रेल के विकास तथा उसकी समस्याओं, ब्रेल लिपि के वैश्विक स्वरूप और उसके भविष्य से संबंधित कुछ प्रमुख चुनौतियों एवं समस्याओं पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। इसी भाग में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी भी दी गई है जिनके विषय में अभी तक हिंदी में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। इन तथ्यों में 'दस बिंदु-प्रणाली', 'राफ़ीग्राफ़', 'अष्ट बिन्दु-ब्रेल' तथा 'डॉट्सप्लस' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में मेरी पूर्वलिखित पुस्तक, 'लुई ब्रेल - व्यक्तित्व और कृतित्व' के अधिकतर अध्याय सम्मिलित हैं। परंतु यहां मैं यह बता देना आवश्यक समझता हूं कि इस नई पुस्तक में इन अध्यायों को सम्मिलित करने से पूर्व लुई ब्रेल के जीवन तथा ब्रेल लिपि के विषय में नवीन अनुसंधानों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर इनमें सभी आवश्यक संशोधन एवं परिवर्तन कर दिए गए हैं। इन अध्यायों के

अतिरिक्त इस पुस्तक में जो नवीन अध्याय सम्मिलित हैं वे सभी उक्त नए अनुसंधानों को ध्यान में रखकर ही लिखे गए हैं, अत: यह पुस्तक मेरी उपर्युक्त पूर्वलिखित पुस्तक की अपेक्षा तथ्यात्मक दृष्टि से अधिक प्रामाणिक तथा व्यापक है।

जैसा कि इस पुस्तक के शीर्षक से ही स्पष्ट है, इसका उद्देश्य पाठकों को लुई ब्रेल के जीवन और उनके क्रांतिकारी आविष्कार, 'ब्रेल लिपि' से अवगत कराना है जिसने दृष्टिहीनों के लिए शताब्दियों से बंद पड़े ज्ञान के द्वार खोल दिए हैं। आज संसार में लगभग सभी सुशिक्षित दृष्टिहीन व्यक्ति इसी लिपि की सहायता से पढ़ते-लिखते तथा अन्य अनेक कार्य करते हैं। संपूर्ण विश्व में दृष्टिहीनों के लिए स्थापित सभी विद्यालयों में उनकी शिक्षा के लिए इसी ब्रेल लिपि का प्रयोग किया जा रहा है।

यदि आप कभी किसी अंधविद्यालय में जाएं तो आप सामान्य विद्यार्थियों की भांति दृष्टिहीन छात्र-छात्राओं को भी पढ़ते-लिखते तथा गणित के प्रश्न हल करते हुए देखेंगे। जिस ब्रेल लिपि द्वारा ये विद्यार्थी पढ़ते-लिखते हैं उसे देखकर आपको शायद कुछ आश्चर्य होगा। आप देखेंगे कि उनकी पुस्तकें सामान्य पुस्तकों से भिन्न प्रकार की हैं और उनके पढ़ने-लिखने का ढंग भी बिल्कुल अलग ही है। वे मोटे कागज़ पर उभरे हुए बिंदुओं को एक अंगुली के अग्रभाग से छूकर पढ़ते हैं और एक विशेष उपकरण 'स्लेट तथा स्टाइलस' द्वारा मोटे कागज़ पर ऐसे ही बिंदु बनाकर लिखते भी हैं। इतना ही नहीं, विद्यालय के अधिकारी शायद आपको यह भी दिखाएंगे कि इन बिंदुओं की सहायता से दृष्टिहीन विद्यार्थी बड़ी कुशलतापूर्वक ताश खेलते हैं और घड़ी देखकर ठीक-ठीक समय भी बताते हैं। सामान्य रूप से आपको सभी बिंदु एक जैसे ही प्रतीत होंगे और आपके लिए यह समझना कठिन हो जाएगा कि आख़िर दृष्टिहीन विद्यार्थी इन बिंदुओं द्वारा कैसे पढ़ते, लिखते तथा ताश खेलते और घड़ी देखते हैं। आप स्वयं एक पुस्तक उठाकर शायद पढ़ने का प्रयत्न करेंगे, किंतु आपकी समझ में कुछ नहीं आएगा। बिंदुओं का यह संसार आपको बहुत ही विचित्र लगेगा।

फिर इन बिंदुओं के संबंध में स्वभावत: आपके मन में कई प्रश्न उठेंगे - क्या ये सभी बिंदु बिल्कुल समान होते हैं? क्या इन्हें एक व्यवस्थित क्रम तथा नियम के अनुसार रखा जाता है? क्या इन बिंदुओं द्वारा संसार के सभी दृष्टिहीन व्यक्ति पढ़-लिख सकते हैं? क्या विश्व की सभी भाषाओं में दृष्टिहीनों के लिए इन बिंदुओं के आधार पर पुस्तकें लिखी जाती हैं? आखिर बिंदुओं वाली इस लिपि का नाम क्या है और इसका आविष्कार किसने किया था? वह किस देश का नागरिक था और उसने अपना जीवन किन परिस्थितियों में बिताया था? उसे दृष्टिहीनों के लिए इस लिपि के आविष्कार की आवश्यकता क्यों अनुभव हुई और इसके लिए उसे प्रेरणा कहां से मिली? क्या उसे इस लिपि के आविष्कार के कारण अपने जीवन-काल में पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ था?

ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो आप दृष्टिहीन विद्यार्थियों को बिंदुओं की सहायता से पढ़ते-लिखते देखकर पूछना चाहेंगे। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं प्रश्नों के प्रामाणिक उत्तर देने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य सरल भाषा तथा रोचक शैली में लुई ब्रेल के जीवन और उनके क्रांतिकारी आविष्कार, 'ब्रेल लिपि' को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना है।

इस पुस्तक में फ्रांसीसी व्यक्तियों के नामों के जो उच्चारण दिए गए हैं वे फ्रैंच भाषा के विशेषज्ञ से लिखित परामर्श लेने के बाद ही लिखे गए हैं, अतः मुझे आशा है कि ये उच्चारण सही और प्रामाणिक होंगे। पाठकों की सुविधा के लिए इन सब नामों के हिंदी उच्चारणों के साथ-साथ कोष्ठकों में इनके फ्रैंच स्पैलिंग्ज़ (Spellings) भी दे दिए गए हैं। मैंने अपनी ओर से इस बात का यथासंभव अधिकतम प्रयास किया है कि लुई ब्रेल के जीवन और उनकी ब्रेल लिपि से संबंधित सभी तथ्यों को ठीक-ठीक तथा निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया जाए। फिर भी यह संभव है कि इसमें कुछ त्रुटियां अथवा कमियां रह गई हों। यदि इस संबंध में प्रबुद्ध पाठक कुछ सुझाव देंगे तो इन सुझावों पर ध्यानपूर्वक विचार किया जाएगा और आवश्यकतानुसार इस पुस्तक के द्वितीय संस्करण में इन्हें कार्यान्वित करने का प्रयास भी किया जाएगा।

यह पुस्तक केवल दृष्टिवान व्यक्तियों के लिए ही नहीं, अपितु दृष्टिहीनों के लिए भी लिखी गई है, अतः इसमें इन दोनों वर्गों के लिए पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। अपनी इसी विशेषता के कारण यह पुस्तक उक्त दोनों वर्गों के पाठकों के लिए लाभदायक, उपयोगी तथा ज्ञानवर्धक सिद्ध हो सकेगी।

जहां तक मुझे ज्ञात है, हिंदी में अभी तक लुई ब्रेल के जीवन और उनकी ब्रेल लिपि के संबंध में नवीनतम अनुसंधानों पर आधारित इतनी प्रामाणिक तथा व्यापक पुस्तक उपलब्ध नहीं है। मुझे आशा है कि यह नई पुस्तक दृष्टिहीनों के कल्याण-कार्य में विशेष रुचि रखने वाले कुछ प्रबुद्ध पाठकों को उक्त विषय पर भविष्य में अधिक गहन शोध-कार्य करने के लिए प्रोत्साहित एवं अभिप्रेरित कर सकेगी।

मैं अपनी इस पुस्तक को लुई ब्रेल की द्वि-जन्म-शताब्दी के पावन अवसर पर उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में सादर समर्पित करता हूँ।

वेद प्रकाश वर्मा

भाग एक

जीवन और व्यक्तित्व

अध्याय-1

पृष्ठभूमि

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन और कार्यों पर उन परिस्थितियों का व्यापक एवं निर्णायक प्रभाव पड़ता है जिनमें उसका जन्म तथा पालन-पोषण होता है। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए लुई ब्रेल तथा उनके क्रांतिकारी आविष्कार, ब्रेल लिपि के विषय में कुछ कहने से पूर्व यहां संक्षेप में उन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का विवेचन करना प्रासंगिक होगा जिनके अंतर्गत उन्हें अपना जीवन व्यतीत करना पड़ा था।

पाश्चात्य जगत् के वैचारिक इतिहास में अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों का विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसी समय वह युग अपने चरम उत्कर्ष पर था जिसे 'प्रबोध युग' ('The Age of Enlightenment') कहा जाता है। यह वह युग था जब बहुत-से महान विचारक एवं दार्शनिक श्रद्धा, आस्था या अंधविश्वास पर आधारित राजनीति तथा धर्म-संबंधी पारंपरिक अवधारणाओं को तोड़कर उनके स्थान पर ऐसी अवधारणाओं की स्थापना कर रहे थे जो केवल तर्क और स्वतंत्र चिंतन पर आधारित थीं। वे इस परंपरागत विचार को अस्वीकार करते थे कि ईश्वर अथवा कोई अन्य दैवी शक्ति मनुष्य के भाग्य को निर्धारित करती है। इस पारंपरिक अवधारणा के स्थान पर वे निश्चित रूप से मानते थे कि यदि तर्क के आधार पर राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक समस्याओं का समाधान किया जाए तो मनुष्य के दुःख को कम किया जा सकता है और इस संसार को अधिक अच्छा बनाया जा सकता है।

प्रबोध युग के इन्हीं महान विचारकों में से एक थे फ्रांस के अठारहवीं शताब्दी के निरीश्वरवादी दार्शनिक, डेनिस डिडरो (Denis Diderot, 1713-1784) जिनके विचारों का दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए विशेष महत्त्व है। 1749

में डिडरो ने अपना एक पत्र प्रकाशित कराया था जिसका शीर्षक था 'दृष्टिवान व्यक्तियों के लिए दृष्टिहीनों से संबंधित एक पत्र'। इस पत्र में उन्होंने एक ऐसे प्रतिभाशाली दृष्टिहीन व्यक्ति का वर्णन किया था जो उभरे हुए अक्षरों के स्पर्श द्वारा सामान्य वर्णमाला पढ़ सकता था और इसी विधि द्वारा दूसरों को भी वर्णमाला पढ़ना सिखा सकता था।

उपर्युक्त पत्र के अतिरिक्त डिडरो ने 1772 में प्रकाशित अपने वृहद 'विश्व-कोष' ('Encyclopaedia') के प्रथम खंड में दृष्टिहीन व्यक्तियों के विषय में दो पृष्ठों का एक महत्त्वपूर्ण लेख भी लिखा था जिसमें उन्होंने कुछ सुशिक्षित एवं प्रतिभाशाली दृष्टिहीनों का विवरण दिया था। फ्रांस की तत्कालीन सरकार इस विश्व-कोष को प्रकाशित कराने के विरुद्ध थी, अत: उसने इसके प्रकाशन में सभी संभव बाधाएं डाली थीं। परंतु फिर भी डिडरो ने बहुत-से महान विचारकों, दार्शनिकों तथा विज्ञानियों की सहायता से लगभग इक्कीस वर्षों तक कठोर परिश्रम करने के पश्चात् पैंतीस खंडों के इस विशाल विश्व-कोष को अंतत: प्रकाशित करवा ही दिया। उस समय यह विश्व-कोष सभी विचारकों के लिए ज्ञान का एक बहुत बड़ा और विश्वसनीय स्रोत माना जाता था।

उपर्युक्त विश्व-कोष के प्रथम खंड में प्रकाशित अपने लेख में डिडरो ने अठारहवीं शताब्दी के एक महान दृष्टिहीन गणितज्ञ, निकोलस सॉन्डरसन (Nicolas Saunderson, 1682-1739) का सविस्तार वर्णन किया था। एक निर्धन परिवार में उत्पन्न सॉन्डरसन शैशव-काल में ही चेचक के कारण पूर्णत: दृष्टिहीन हो गए थे। परन्तु उनकी गणित-विषयक विलक्षण प्रतिभा बाल्यकाल से ही दिखाई देने लगी थी। लेकिन उनकी समस्या यह थी कि वे सामान्य बालकों की भांति पारंपरिक उपायों द्वारा शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते थे, अत: उन्होंने कुछ अच्छे वाचकों की सहायता से घर में ही व्यक्तिगत रूप से गणित का अध्ययन किया था। बाद में उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के क्राइस्ट कॉलेज में गणित की उच्च शिक्षा प्राप्त की जहाँ सभी विद्यार्थी तथा शिक्षक उनका बहुत सम्मान करते थे। सॉन्डरसन के विषय में यह कहा जाता था कि वे गणित-विषयक किसी भी जटिल समस्या का सरलतापूर्वक समाधान कर देते थे। वे अपने उक्त विषय में इतने निपुण तथा अच्छे शिक्षक थे कि उस समय के बड़े-बड़े गणितज्ञ भी उन से शिक्षा प्राप्त करने आते थे। सॉन्डरसन के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए आने वाले इन गणितज्ञों की संख्या इतनी अधिक होती थी कि वे उन सब के लिए बड़ी कठिनाई से ही समय निकाल पाते थे।

फिर कुछ समय बाद जब कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गणित के प्रोफ़ेसर का स्थान रिक्त हुआ तो उन्हें ही इस गौरवपूर्ण पद के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति मानकर यह

पद प्रदान किया गया। उनकी इस नियुक्ति के लिए तत्कालीन महान विज्ञानी तथा विचारक, आइज़ॉक न्यूटन ने स्वयं सिफ़ारिश की थी। परंतु सॉन्डरसन के पास कोई औपचारिक उपाधि नहीं थी, अत: ब्रिटेन की तत्कालीन महारानी ने उन्हें 'एल. एल. डी.' ('डॉक्टर आफ़ लैटर्स') की सर्वोच्च उपाधि प्रदान करने का विशेष आदेश दिया था। वे काफ़ी समय तक कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गणित के प्रोफ़ेसर के पद पर सफलतापूर्वक कार्य करते रहे। यहां यह याद रखना आवश्यक है कि सॉन्डरसन ने उस समय यह महान सफलता ब्रेल लिपि की सहायता के बिना ही प्राप्त की थी, क्योंकि तब तक तो लुई ब्रेल का जन्म ही नहीं हुआ था।

आज बहुत कम लोग जानते हैं कि फ्रांस के वालोंतं ओए (Valentin Hauy, 1745-1822) को दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए मूल प्रेरणा डिडरो का वह लेख पढ़कर मिली थी जिसमें उन्होंने कुछ अन्य प्रतिभाशाली दृष्टिहीन व्यक्तियों के साथ-साथ सॉन्डरसन की गणित-विषयक आश्चर्यजनक सफलता और विलक्षण प्रतिभा का भी वर्णन किया था। वालोंतं ओए ने स्वयं कहा है कि जब उन्होंने डिडरो के विश्व-कोष में प्रकाशित दृष्टिहीनों के संबंध में लेख पढ़ा तो उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि दृष्टिहीन व्यक्तियों को भी शिक्षा दी जा सकती है। इस से स्पष्ट है कि दृष्टिहीनों की शिक्षा में डिडरो का अप्रत्यक्ष, किंतु महत्त्वपूर्ण, योगदान अवश्य रहा है।

डिडरो के अतिरिक्त ऑस्ट्रिया की राजधानी वियाना से पैरिस आने वाली एक दृष्टिहीन स्त्री, मारी थेरेसिया वों पारादी(Maria Theresia Von Paradis) से भी ओए को दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए प्रेरणा मिली थी। उन्होंने देखा था कि मारी में संगीत की अद्भुत योग्यता है जिस से वे श्रोताओं को अत्यधिक प्रभावित और मुग्ध कर लेती हैं। इस संगीत-प्रतिभा के साथ-साथ मारी की एक अन्य आश्चर्यजनक योग्यता से भी वे बहुत प्रभावित हुए थे। यह योग्यता थी उभरे हुए अक्षरों को छूकर सामान्य वर्णमाला पढ़ने-लिखने की उनकी क्षमता। ये अक्षर एक छोटी-सी प्रेस में लगे पिनों द्वारा कागज़ पर उभारे जाते थे जिनका स्पर्श करके वे पढ़ सकती थीं। इतना ही नहीं, ऐसे अक्षरों के माध्यम से वे स्वयं पत्र लिख भी लेती थीं। स्पर्श द्वारा पढ़ने-लिखने की यह अद्भुत छोटी-सी प्रेस उनके लिए ऑस्ट्रिया के एक कुशल यंत्र-विशेषज्ञ ने बनाई थी। ओए ने मारी के घर जाकर स्वयं यह प्रेस देखी थी। इसे देखकर उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वे दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए अवश्य प्रयत्न करेंगे।

ओए को अब पूरा विश्वास हो गया था कि कागज़ पर उभरे हुए सामान्य अक्षरों के स्पर्श द्वारा पढ़-लिखकर दृष्टिहीन व्यक्ति भी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

वे निश्चित रूप से मानते थे कि दृष्टिहीनों को दी जाने वाली यह शिक्षा निम्नलिखित तीन महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों की पूर्ति कर सकेगी :

1. दृष्टिहीनता से उत्पन्न निष्क्रियता के दु:खद तथा ख़तरनाक भार से उन्हें बचाना;
2. सरल एवं आनंदप्रद व्यवसायों द्वारा रोज़गार प्राप्त करने में उनकी सहायता करना;
3. उन्हें आत्म-निर्भर बनाकर समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित करना।

इन्हीं उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए ओए ने पैरिस में 1784 में विश्व के प्रथम अंधविद्यालय की स्थापना की थी। यही वह अंधविद्यालय था जिसमें लुई ब्रेल ने शिक्षा प्राप्त की, अध्यापन-कार्य किया और अंतत: क्रांतिकारी ब्रेल लिपि का अद्भुत आविष्कार भी किया।

उपर्युक्त अंधविद्यालय की स्थापना की कहानी काफ़ी रोचक है। 1784 में एक दिन ओए ने देखा कि एक दृष्टिहीन नवयुवक अपने निर्धन परिवार की सहायता करने के लिए गिरजाघर के निकट सड़क पर भीख मांग रहा है। उन्होंने उस से कहा कि वे उसे पढ़ना-लिखना सिखा सकते हैं और रोजगार के लिए कुछ व्यवसायों की शिक्षा भी दे सकते हैं। वह युवक तो उनकी बात मान गया, किंतु उसके परिवार ने आपत्ति करते हुए कहा कि उस युवक की भिक्षावृत्ति ही सारे परिवार के भरण-पोषण का अनिवार्य साधन है जिस से वह वंचित नहीं होना चाहता। ओए के लिए यह एक कठिन समस्या थी, क्योंकि अपनी सीमित आय में ही उन्हें अपने परिवार का पालन-पोषण करना पड़ता था। परंतु उन्होंने तो उस दृष्टिहीन युवक को शिक्षा देने का निश्चय कर लिया था; इसी कारण उन्होंने उससे कहा कि वे स्वयं उसे प्रति मास उतने पैसे दे देंगे जितने वह भीख मांगकर कमा लेता है। इस तरह जून 1784 में ओए ने एक ऐसी विचित्र व्यवस्था का प्रारंभ किया जिसमें स्वयं शिक्षक ही विद्यार्थी को पढ़ाने के पैसे दे रहा था। सौभाग्यवश वह युवक बहुत बुद्धिमान था, अत: उसकी शैक्षणिक प्रगति काफ़ी तेज गति से हुई। उसने शीघ्र ही लकड़ी से बनाए गए अक्षरों के माध्यम से सामान्य वर्णमाला पढ़ना सीख लिया।

फिर एक दिन एक ऐसी घटना हुई जिस से ओए आश्चर्यचकित रह गए। बात यह थी कि वह युवक यों ही एक कागज़ पर हाथ फेर रहा था जिस पर किसी व्यक्ति की अर्थी से संबंधित सूचना लिखी थी। उसकी अंगुली सहसा एक अक्षर पर रुक गई और उसने अपने शिक्षक से पूछा कि क्या यह अक्षर 'ओ' है। वह सचमुच 'ओ' अक्षर ही था जिसे उसने कागज़ पर प्रेस द्वारा उभरे हुए गोल आकार को छूकर पहचान लिया था। यह घटना ओए के लिए केवल आश्चर्यजनक ही नहीं, अपितु

अत्यधिक हर्षप्रद तथा उत्साहवर्धक भी थी, क्योंकि इस से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि दृष्टिहीन व्यक्ति कागज़ पर उभरे हुए सामान्य अक्षरों का स्पर्श करके उन्हें पहचान सकता है। तब उन्होंने अनेक कागज़ों पर सामान्य वर्णमाला के बहुत-से अक्षर बनाए और अपने शिष्य को पढ़ने के लिए दे दिए। उन्होंने देखा कि वह धीरे-धीरे सभी अक्षरों को छूकर पहचान सकता है। फिर लगभग तीन महीनों के अभ्यास के बाद वह संपूर्ण सामान्य वर्णमाला पढ़ने और लिखने लगा।

यह एक ऐसा चमत्कार था जिसने दृष्टिहीनों के लिए शिक्षा के द्वार खोलना आरंभ किया था। बाद में ओए और उनके प्रथम दृष्टिहीन विद्यार्थी ने फ्रांस की एक संस्था, 'अकेडेमिक ब्योरो ऑफ़ राइटिंग' के प्रतिष्ठित सदस्यों के समक्ष अपनी इस सफलता को संयुक्त रूप से प्रस्तुत किया। पहले ओए ने दृष्टिहीनों की शिक्षा के विषय में एक आलेख पढ़ा और इसके बाद उनके छात्र ने अपनी अंगुलियों से छूकर उसी आलेख को पढ़कर सुनाया। इस आलेख में महान दृष्टिहीन गणितज्ञ, निकोलस सॉन्डरसन के जीवन के विषय में कुछ अंश प्रस्तुत किए गए थे जिनकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं। उपर्युक्त आलेख को पढ़ने के अतिक्ति उस दृष्टिहीन छात्र ने टाइपसैटिंग (Typesetting) से मिलती-जुलती प्रक्रिया द्वारा स्वयं ऐसे वाक्यांश 'लिखकर' भी दिखाए जो उसे लिखवाए गए थे।

फिर दिसम्बर 1784 में ओए तथा उनके शिष्य ने फ्रांस की 'रॉयल अकेडेमी ऑफ़ साइंसिज़' के समक्ष संयुक्त रूप से पढ़ने-लिखने का ऐसा ही एक अन्य प्रदर्शन किया जिस से उक्त संस्था के सदस्यों को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने उस दृष्टिहीन छात्र की बहुत प्रशंसा की। इसके पश्चात् फ्रांस की कुछ अन्य संस्थाओं के समक्ष भी उन दोनों ने इसी प्रकार के प्रदर्शन किए जो बहुत सफल रहे। इन सब सफलताओं से प्रोत्साहित होकर ओए ने अपने घर में ही दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए एक छोटा-सा स्कूल खोल लिया जिसमें प्रारंभ में केवल बारह छात्र पढ़ते थे। इन छात्रों को 'फ़िलैंथ्रॉपिक सोसाइटी' ('Philanthropic Society') नामक एक संस्था थोड़ी-सी छात्रवृत्ति देती थी। ये सभी दृष्टिहीन छात्र पूर्णत: निरक्षर तथा बहुत ग़रीब थे। इन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति देने के अतिरिक्त उक्त संस्था उस दृष्टिहीन युवक को भी कुछ आर्थिक सहायता देती थी जो इन विद्यार्थियों को उसी विधि से पढ़ना-लिखना सिखाता था जिस विधि से स्वयं उसने सीखा था।

कुछ समय तक ओए अपने घर में ही इस छोटे-से अंधविद्यालय को चलाते रहे। परंतु जब धीरे-धीरे छात्रों की संख्या बढ़ने लगी तब उन्हें इस विद्यालय के लिए अधिक बड़े मकान की आवश्यकता का अनुभव हुआ। उनकी इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए 'फ़िलैंथ्रॉपिक सोसाइटी' ने एक बड़ा मकान किराए पर लेकर

उन्हें इस स्कूल के लिए दे दिया। यह मकान उन्हें 1786 में पैरिस में मिला था।

ओए अपने इस विद्यालय में दृष्टिहीन छात्रों तथा छात्राओं को वैसी ही सामान्य शिक्षा देना चाहते थे जैसी उस समय फ्रांस में दृष्टिवान विद्यार्थियों को दी जाती थी। इस शिक्षा में उन्होंने पढ़ना, लिखना, गणित, इतिहास तथा भूगोल के अतिक्ति संगीत और कुछ हस्तकलाओं को भी सम्मिलित किया था ताकि शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् विद्यार्थी उपयुक्त रोजगार पाकर आत्म-निर्भर बन सकें। इस शिक्षा के लिए सर्वप्रथम उन्होंने ही अपने विद्यालय में कागज़ पर उभरे हुए सामान्य अक्षरों की विशेष पुस्तकें तैयार करवाई थीं जिन्हें दृष्टिहीन विद्यार्थी अंगुलियों से छूकर पढ़ सकते थे। इस से पूर्व दृष्टिहीनों के लिए कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी। ओए के इन सारे प्रयासों को ध्यान में रखते हुए यह कहना निश्चय ही उचित होगा कि वे ही दृष्टिहीनों की शिक्षा के जन्मदाता थे। इस प्रकार लुई ब्रेल के जन्म से पहले ही अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक दृष्टिहीनों की शिक्षा के संबंध में उपर्युक्त सारी पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी जिसका बाद में उन्होंने पर्याप्त लाभ उठाया था।

अब संक्षेप में फ्रांस की उन राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों पर भी विचार कर लेना आवश्यक है जिनमें लुई ब्रेल का जन्म हुआ था और जिनका उनके जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। उनके जन्म से लगभग बीस वर्ष पूर्व 1789 में फ्रांस में बहुत बड़ी रक्तरंजित क्रांति हुई थी जिसने वहां शताब्दियों से चले आ रहे एकतंत्रात्मक शासन को उखाड़ फेंका था और इस देश के इतिहास को पूरी तरह बदल दिया था। परंतु अगले लगभग दो दशकों में लुई ब्रेल के जन्म-काल तक इस क्रांति का हिंसात्मक प्रभाव काफी कम हो चुका था। यहां यह उल्लेखनीय है कि उनके जन्म-काल, 1809 का विश्व के इतिहास में विशेष महत्त्व है, क्योंकि इसी वर्ष के कुछ प्रारंभिक सप्ताहों में तीन महान व्यक्तियों का जन्म हुआ था जिन्होंने संसार के इतिहास में क्रांतिकारी परिवर्तन किए थे। ये तीन महान व्यक्ति थे विकासवादी सिद्धांत के प्रणेता चार्ल्स डार्विन, दासता की क्रूर प्रथा को समाप्त करने वाले अमेरिका के सोलहवें राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन तथा दृष्टिहीनों के लिए शताब्दियों से बंद ज्ञान के द्वार खोलने वाली ब्रेल लिपि के क्रांतिकारी आविष्कारक लुई ब्रेल।

उपर्युक्त तीन व्यक्तियों में से डार्विन और लिंकन को तो उनके जीवन-काल में ही पर्याप्त ख्याति प्राप्त हो गई थी, किंतु दुर्भाग्यवश लुई ब्रेल अपने जीवन में वह यश अथवा सम्मान न पा सके जिसके वे पूरी तरह अधिकारी थे। 1852 में उनकी मृत्यु के बाद लगभग एक शताब्दी के दीर्घ काल के पश्चात ही उन्हें विश्वव्यापी मान्यता और ख्याति प्राप्त हो सकी। उनका दुर्भाग्य यह रहा कि वे अपने

जीवन-काल में केवल यश तथा सम्मान से ही वंचित नहीं रहे, अपितु उनका शैशव और बाल्यकाल भी सुखपूर्वक व्यतीत नहीं हो सका। तीन वर्ष की अल्पायु में ही एक अप्रत्याशित दुर्घटना के फलस्वरूप उनकी नेत्र-ज्योति सदा के लिए समाप्त हो गई और उनका सारा जीवन अंधकार में डूब गया।

जब लुई ब्रेल लगभग पांच वर्ष के थे, तब उनके गांव, कूरे (Coupvray) पर बहुत बड़ी विपत्ति आ गई। उस समय यूरोप के बहुत-से देशों के साथ फ्रांस के शासक, नेपोलियन बोनापार्ट (Napoleon Bonaparte) का युद्ध चल रहा था जिसके कारण उस देश में सर्वत्र अशांति और उथल-पुथल मची हुई थी। जिस क्षेत्र से भी सैनिक गुजरते थे उसके निवासियों को वे काफी कष्ट देते थे। स्पष्ट है कि कूरे भी इसका अपवाद नहीं हो सकता था। नेपोलियन और उसके विरोधी देशों के सैनिकों ने अनेक बार इस गांव को पददलित किया था। जनवरी 1814 में नेपोलियन की पीछे हटती हुई सेना ने अन्य सभी गांवों के साथ-साथ कूरे के निवासियों से भी बहुत बड़ी मात्रा में अनाज और पशुओं की मांग की थी जो उन्हें न चाहते हुए भी पूरी करनी पड़ी। फिर इस सेना के चले जाने के एक महीने बाद पैरिस जाती हुई रूस की सेना कूरे में घुस गई। घुसते ही इस विदेशी सेना ने सीधे-सादे ग्राम-वासियों पर अत्याचार करना आरंभ कर दिया जिसमें लुई ब्रेल का परिवार भी सम्मिलित था।

फिर 1815 में जब नेपोलियन की सेना अंतत: वाटरलू (Waterloo) में पराजित हो गई तो फ्रांस से 'वियाना शांति-संधि' का अनुपालन करवाने के लिए बहुत-से देशों की सेना लगभग तीन वर्षों तक इसी देश में विद्यमान रही। इस तरह लुई ब्रेल के बाल्यकाल में फ्रांस एक पराजित और अपमानित राष्ट्र बन गया था। स्वयं उनके घर पर प्रूशिया के सैनिकों ने कई महीनों तक बलपूर्वक अपना क़ब्ज़ा बनाए रखा और उनके सारे परिवार को इन अशिष्ट विदेशी सैनिकों के दुर्व्यवहार तथा अत्याचारों को सहन करना पड़ा। ये सैनिक उनके घर के सब से अच्छे कमरों में रहते थे, सब से अच्छा खाना खाते थे, वहां रखी सारी मदिरा स्वयं पी जाते थे और परिवार के सदस्यों के लिए कुछ भी नहीं छोड़ते थे। इतना ही नहीं, वे कभी-कभी घर का फ़र्नीचर भी जला देते थे और असहाय बच्चों तथा स्त्रियों को पीटते भी थे। विदेशी सैनिकों के ये अत्याचार संपूर्ण परिवार - विशेषत: दृष्टिहीन बालक लुई ब्रेल - के लिए बहुत कष्टदायक थे। इस प्रकार लुई ब्रेल की बाल्यावस्था के ये दिन अत्यधिक दु:ख में ही बीते थे।

1816 में कूरे भयानक ग़रीबी का शिकार हो गया था। उस वर्ष वहां ग्रीष्म ऋतु न आने के कारण फसल बहुत कम हुई और जो फसल पैदा हुई उसे भी वहां उपस्थित विदेशी सैनिकों ने बलपूर्वक किसानों से छीन लिया। इसी कारण उन दिनों

कूरे में भुखमरी तथा बीमारी फैल गई जिसके फलस्वरूप बहुत-से लोग मारे गए। उस समय वहां विशेषतः चेचक का भंयकर प्रकोप था जिसने महामारी का रूप ले लिया। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षो में चेचक एक ऐसा गंभीर रोग था जो बहुत-से बच्चों को प्रायः कुरूप बना देता था और उनमें से लगभग एक-तिहाई बच्चों की तो मृत्यु ही हो जाती थी। उस युग में यह रोग संसार में दृष्टिहीनता का एक प्रमुख कारण था। परंतु सौभाग्य की बात यह रही कि यद्यपि लुई ब्रेल के पिता ने अपने परिवार के किसी सदस्य को चेचक का टीका नहीं लगवाया था, फिर भी उनका सारा परिवार इस रोग से मुक्त रहा। इस संबंध में भाग्यशाली होने के बावजूद अल्पायु के बालक लुई ब्रेल सहित उनके परिवार को वे सभी भयंकर विपत्तियां सहन करनी पड़ी जिनकी चर्चा ऊपर की गई है।

तो ये थीं वे दुःखद परिस्थितियां जिनके अंतर्गत लुई ब्रेल का जन्म हुआ था और जिनमें उन्हें अपना शैशव, बाल्यकाल तथा शेष सारा जीवन व्यतीत करना पड़ा।

•

अध्याय-2

शैशव और बाल्यावस्था

4 जनवरी, 1809 का दिन था। पैरिस से लगभग 40 किलो मीटर दूर 'कूरे' नामक ग्राम के निवासी सदा की भांति उस दिन भी अपने-अपने काम-काज में व्यस्त थे। परंतु सिमो रने ब्रेल (Simon-Rene Braille) के घर में विशेष हल-चल थी; सारे परिवार में खुशी की लहर छाई हुई थी। सभी घर में आने वाले नए शिशु की प्रतीक्षा में थे। इतने में नवजात शिशु के रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी। परिवार की खुशी का ठिकाना न रहा! परंतु इस बात से सभी को कुछ चिंता हुई कि शिशु बहुत ही कमजोर था। उसे देखकर दाई ने सिमो से कहा, "यह बच्चा बहुत दिनों तक जीवित नहीं रहेगा।" सौभाग्यवश दाई की यह आशंका निर्मूल सिद्ध हुई। शिशु कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गया और शीघ्र ही माता-पिता तथा भाई-बहनों के लाड़-प्यार का केंद्र बन गया। यही शिशु आगे चलकर 'लुई ब्रेल' के नाम से विख्यात हुआ।

लुई अपने सब भाई-बहनों से छोटा था। उससे बड़ा एक भाई तथा दो बहनें थीं। सब से छोटी बहन भी लुई से लगभग 11 वर्ष बड़ी थी। इसी कारण सभी लुई को अत्यधिक प्यार करते और उसका विशेष ध्यान रखते थे। धीरे-धीरे वह बड़ा होने लगा और उसकी बालसुलभ किलकारियों से सारा घर गूंजने लगा। वह अपने सारे भाई-बहनों और माता-पिता के लिए मानो एक सजीव खिलौना था जिससे खेलकर वे सब अपार सुख का अनुभव करते थे। वृद्धावस्था में लुई को पाकर उसके पिता बहुत प्रसन्न हुए थे और उसे बुढ़ापे का सहारा समझते थे।

जिस समय लुई का जन्म हुआ था वह युग फ्रांस के इतिहास में बहुत बड़ी उथल-पुथल और क्रांति का युग था। फ्रांस की जनता ने अत्याचारी शासक लुई सोलहवें के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। यह वह समय था जब नेपोलियन ने अपने

आपको फ्रांस का सम्राट घोषित कर दिया था और वह यूरोप की सीमाओं में परिवर्तन करने का प्रयत्न कर रहा था। इस प्रकार कूरे से लगभग 40 किलोमीटर दूर पैरिस में नए इतिहास का निर्माण हो रहा था, किंतु इस छोटे-से गांव के निवासी उक्त बड़ी-बड़ी क्रांतिकारी घटनाओं से अलग, अपने ही सुख-दु:ख में मग्न थे। उनके लिए वाटरलू में नेपोलियन की पराजय की अपेक्षा अपने जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं का कहीं अधिक महत्त्व था। इसी सीमित संसार में, फ्रांस की तत्कालीन उथल-पुथल से दूर, लुई ब्रेल का बचपन बीत रहा था।

लुई के माता-पिता साधारण ग्रामवासी थे। वे पढ़े-लिखे थे या नहीं, इस संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है। हां, उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। लुई के पिता ने कठोर परिश्रम करके कुछ धन कमाया था जिससे उन्होंने एक छोटी-सी वर्कशॉप स्थापित कर ली थी। इस वर्कशॉप में वे चमड़े का काम करते थे। घोड़ों के लिए लगाम, जीन आदि बनाना उनका मुख्य व्यवसाय था। उनकी यह वर्कशॉप घर के साथ ही जुड़ी हुई थी और उनके परिवार के भरण-पोषण का एकमात्र साधन थी।

लुई जब चलना सीख गया तो वह प्राय: अपने पिता के साथ इसी वर्कशॉप में आ जाता और वहीं खेलता रहता था। उसके पिता उसे वहाँ आने से तो नहीं रोकते थे, किंतु इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि वह कोई ऐसी चीज़ न उठा ले जिससे उसे चोट लगने का भय हो। इसी कारण वे उसे वर्कशॉप में अकेला कभी नहीं छोड़ते थे। लुई की बालसुलभ चंचलता और जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी। वह अपने आस-पास की सभी वस्तुओं को जानना चाहता था और अपने पिता को चमड़े के विभिन्न प्रकार के टुकड़े काटते हुए बड़ी उत्सुकता से देखा करता था। उसकी तीव्र इच्छा होती थी कि वह भी ऐसे ही चमड़े के टुकड़े-काटे, पर पिता के उपस्थित होने के कारण उसे कभी अवसर ही नहीं मिलता था। उसके पिता इस संबंध में अत्यधिक सावधान रहते थे।

परंतु एक दिन लुई को अपनी इच्छा पूरी करने का अवसर मिल ही गया। उसके पिता मुहल्ले में किसी ग्राहक से बात करने के लिए वर्कशॉप से बाहर चले गए थे। लुई तो ऐसे अवसर की तलाश में था ही। वर्कशॉप को खुला देखकर वह चुपके-से उसमें घुस गया। वहां तरह-तरह के औजार और चमड़े के टुकड़े बिखरे पड़े थे। लुई ने शीघ्र ही चमड़े का एक बड़ा टुकड़ा उठा लिया और अपने पिता की नकल करते हुए उसे चाकू से काटने की कोशिश करने लगा। चमड़ा काफ़ी सख़्त था और नन्हें लुई के हाथ बहुत कमजोर थे। उसने चमड़े के टुकड़े को काटने के लिए पूरा ज़ोर लगाया। पर यह काम कमज़ोर और नन्हें लुई के लिए बहुत कठिन

था। चमड़े के उस सख़्त टुकड़े को काटते समय चाकू अचानक उसकी बाईं आंख में जा लगा। खून की धार बह निकली! लुई वहीं गिर पड़ा और उसके चीत्कार से सारा घर गूंज उठा! चीख सुनकर उसके पिता दौड़े आए। मां भी घबराई हुई वहां पहुंच गईं। परंतु तब तक लुई की आंख में काफी बड़ा घाव हो चुका था!

यह दुर्घटना जनवरी 1812 में हुई थी जब लुई केवल तीन वर्ष का था। यदि वर्तमान समय में ऐसी दुर्घटना होती तो शीघ्र उपचार द्वारा शायद बालक की आंखों को बचाया जा सकता था। परंतु उस समय नेत्र-चिकित्सा के क्षेत्र में बहुत ही कम प्रगति हुई थी। इसके अतिरिक्त अन्य ग्रामवासियों की भांति लुई के पिता भी विशेषज्ञ चिकित्सकों से उपचार कराने की अपेक्षा घरेलू इलाज और टोने-टोटकों में अधिक विश्वास करते थे। इसी कारण उक्त दुर्घटना के तुरंत बाद उन्होंने एक ऐसी वृद्धा को बुलाया जो आंखों का इलाज करने के लिए उस गांव में प्रसिद्ध थी। उसने पानी में कुछ जड़ी-बूटियां मिलाकर लुई की आंख का उपचार आरंभ कर दिया। बालक असह्य पीड़ा के कारण ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था और उसके माता-पिता तथा भाई-बहन घबराए हुए वहीं खड़े थे। शोर सुन कर बहुत-से अन्य ग्रामवासी भी वहां आ गए थे। सब के मन में एक ही प्रश्न उठ रहा था : 'क्या अब लुई पहले की भांति देख सकेगा ?' मां-बाप और भाई-बहनों का दिल भावी अनिष्ट की आशंका एवं भय से बैठा जा रहा था। वृद्धा जड़ी-बूटियों वाला पानी बालक की आंख पर लगातार छिड़क रही थी। कुछ देर बाद लुई ने रोना बंद कर दिया। शायद उसकी पीड़ा अब बहुत कम हो गई थी। यह देखकर सब को बहुत शांति मिली, गहरे संतोष का अनुभव हुआ। उन्होंने सोचा कि लुई की आंख अब बिल्कुल ठीक हो गई है। वहां उपस्थित सभी ग्रामवासियों ने लुई के माता-पिता को बधाई दी और खुशी से नाच उठे! स्वयं लुई के माता-पिता और भाई-बहन भी बालक को शांत देखकर बहुत प्रसन्न थे।

परंतु यह सुख और संतोष केवल एक भ्रम था जो शीघ्र ही टूट गया। कुछ दिनों के बाद लुई की बांईं आंख में फिर तीव्र पीड़ा होने लगी। यही नहीं, उसके माता-पिता ने देखा कि वह किसी को नहीं पहचानता और चलते समय घर में पड़ी चीजों से बार-बार टकराता जाता है। स्पष्ट था कि लुई कुछ भी नहीं देख पा रहा था। यह एक ऐसी दुखद स्थिति थी जिसकी कल्पना किसी ने नहीं की थी! इसी कारण सारा परिवार एक बार फिर गहरे शोक में डूब गया! अब लुई के पिता ने नेत्र-विशेषज्ञ से परामर्श लेने का निश्चय किया। वे उसे घोड़े पर बिठाकर पैरिस के एक नेत्र-चिकित्सक के पास ले गए। चिकित्सक ने लुई की आंखों की अच्छी तरह जाँच की। परंतु तब तक बहुत देर हो चुकी थी और अवसर हाथ से निकल चुका था। बाईं

आंख के साथ-साथ दाहिनी आंख को भी अत्यधिक हानि पहुंच चुकी थी।

लुई के पिता समझ गए कि उनका बेटा सदा के लिए अपनी आंखें खो चुका है! अब वह इस संसार को कभी नहीं देख पाएगा! मन में गहरी पीड़ा और निराशा लिए वे घर लौट आए! परंतु लुई उस समय अबोध था; वह न जान सका कि उसने अपने जीवन की कितनी अमूल्य निधि सदा के लिए खो दी है! तीन वर्ष की अल्पायु में ही उसका सारा जीवन कभी न मिटने वाले गहरे अंधकार में डूब गया! अपने लाड़ले लुई को इस दयनीय स्थिति में देखकर और उसके अंधकारमय भविष्य की कल्पना करके सारा परिवार अपार दु:ख, शोक तथा निराशा का अनुभव कर रहा था, पर सब असहाय थे; उसके लिए कोई कुछ नहीं कर सकता था! तब किसी ने इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि यही नन्हां दृष्टिहीन लुई एक दिन विश्व-विख्यात महान व्यक्ति बनेगा,करोड़ों व्यक्ति उसे सादर श्रद्धांजलि अर्पित करेंगे और संसार में उसका नाम सदा अमर रहेगा! मनुष्य की नियति की यही विचित्र लीला है!

लुई ने यह कब जाना कि वह दृष्टिहीन है, इस संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। शायद पांच या छह वर्ष की आयु में उसे यह मालूम हुआ होगा कि उसमें और अन्य बालकों में एक बहुत बड़ा अंतर है - उसके सभी साथी वस्तुओं और व्यक्तियों को देख सकते हैं, पर उसे कुछ नहीं दिखाई पड़ता। क्या दृष्टिहीनता के इस ज्ञान से लुई को बहुत बड़ा मानसिक आघात पहुंचा होगा? शायद नहीं। इसका कारण यह है कि जो व्यक्ति जन्म से दृष्टिहीन होते हैं अथवा अल्पायु में ही अपनी नेत्र-ज्योति खो देते हैं वे अन्य शारीरिक विशेषताओं की भांति दृष्टिहीनता को भी अपने जीवन का अभिन्न अंग मान लेते हैं और ऐसा अज्ञात रूप में तथा स्वाभाविक ढंग से ही हो जाता है। परंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि दृष्टिहीनता के बोध से ऐसे बालकों को कोई मानसिक कष्ट नहीं होता। अपने साथियों और अभिभावकों के भिन्न व्यवहार से वे शीघ्र ही जान लेते हैं कि उन्होंने एक ऐसी महत्त्वपूर्ण क्षमता खो दी है जो दूसरों के पास है। धीरे-धीरे वे यह समझने लगते हैं कि दृष्टिहीन होने के कारण वे अनेक काम नहीं कर पाते और बहुत-से खेलों में भी भाग नहीं ले सकते। दूसरों से भिन्नता और असमर्थता का यह बोध उनके लिए अत्यधिक कष्टदायक होता है। इसके कारण वे यह अनुभव करने लगते हैं कि वे इस संसार से अलग, बिल्कुल अकेले हैं।

अन्य दृष्टिहीन बच्चों की भांति लुई को भी इसी दु:खद स्थिति से गुजरना पड़ा। छह-सात वर्ष की आयु में, जब वह यह जान गया था कि वह दृष्टिहीन है और सदा ऐसा ही रहेगा, तो उसके व्यवहार में बहुत परिवर्तन आ गया। उसकी बालसुलभ चंचलता लुप्त हो गई और वह मौन, शांत, गंभीर तथा दूसरों से अलग रहने लगा।

वह किसी खेल में भाग न लेता और घर के कोने में चुपचाप बैठा रहता था। दृष्टिहीनता के बोध ने उसका संपूर्ण बालसुलभ आनंद छीन लिया था और बाल्यावस्था में ही उसे गंभीर वयस्क व्यक्ति-जैसा बना दिया था।

यदि लुई को अनेक वर्षों तक इसी कष्टदायक स्थिति में रहना पड़ता तो उसका व्यक्तित्व कुंठित हो सकता था। परंतु सौभाग्यवश उसकी यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही। उसके प्रति परिवार के उचित एवं संतुलित दृष्टिकोण ने इस दु:खद स्थिति को समाप्त करने में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान किया। लगभग सभी ग्रामवासियों का विश्वास था कि लुई अपने लिए कभी जीविका नहीं कमा सकेगा और उसे दूसरों पर ही आश्रित रहना पड़ेगा। वस्तुत: उस समय फ्रांस तथा अन्य सभी देशों में दृष्टिहीनों के विषय में यही निराशाजनक धारणा प्रचलित थी। परंतु लुई के माता-पिता और भाई-बहनों का दृष्टिकोण इस से बिल्कुल भिन्न था। वे उसे अधिक-से-अधिक आत्म-निर्भर बनाना चाहते थे। इसी लिए वे सदा यही प्रयत्न करते थे कि लुई अपने सभी काम यथासंभव स्वयं करे। उन्होंने छह-सात वर्ष की उम्र में ही उसे छड़ी की सहायता से अपने गांव में रास्ता ढूंढ़ना सिखा दिया था। उनके प्रयत्न और प्रोत्साहन के कारण लुई दूसरों पर निर्भर न रहकर अपने सभी छोटे-छोटे काम स्वयं करने लगा था। बाल्यावस्था में प्राप्त यह आत्म-निर्भरता आजीवन लुई के व्यक्तित्व की बहुत महत्त्वपूर्ण विशेषता बनी रही जिसके फलस्वरूप आगे चलकर वह अनेक महान सफलताएं प्राप्त कर सका।

•

अध्याय-3

शिक्षा का आरंभ

यह सत्य है कि लुई बाल्यावस्था में ही काफ़ी आत्म-निर्भर हो गया था, किंतु इससे उसकी निराशा और उदासी कम नहीं हुई थी। वह अपने साथियों से अलग, सदा अपने आप में ही खोया रहता था। अल्पायु में ही दृष्टिहीन हो जाने के कारण उसके मन में दृष्टि-संबंधी कोई स्मृति शेष नहीं रह गई थी और अन्य बालकों की अपेक्षा उसका ज्ञान भी बहुत सीमित था। लुई की इस दुखद मानसिक स्थिति का अंत करने में 'कूरे' के पादरी, जाक पालूइ (Jacques Palluy) ने विशेष योगदान किया था। गांव के पादरी के रूप में जब उनकी नियुक्ति हुई तब लुई लगभग सात वर्ष का हो चुका था। स्वभावत: उनके मन में इस बालक के प्रति विशेष सहानुभूति उत्पन्न हुई और उन्होंने उसे धार्मिक शिक्षा देने का निश्चय किया। लुई के पिता ने भी इस संबंध में उनके अनुरोध को स्वीकार कर लिया और वे उसे प्रतिदिन श्री पालूइ के पास भेजने लगे। इस प्रकार सर्वप्रथम गिरजाघर में एक धर्मनिष्ठ पादरी द्वारा लुई की शिक्षा का प्रारंभ हुआ ।

श्री पालूइ बहुत ही दयालु स्वभाव के तथा सुशिक्षित व्यक्ति थे। नगरों के कोलाहल से दूर प्राकृतिक वस्तुओं एवं दृश्यों के प्रति उनका विशेष लगाव और आकर्षण था। इसी कारण उन्होंने सब से पहले लुई को पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों का ज्ञान कराना आरंभ किया। प्रकृति की गोद में किसी बड़े वृक्ष के नीचे बैठकर वे उसे विविध प्रकार की ध्वनियों द्वारा विभिन्न पक्षियों की पहचान कराते और उनके नाम भी बताते थे। लुई इन पक्षियों को देख तो नहीं सकता था, किंतु उनकी अलग-अलग ध्वनियां सुनकर उसने उन्हें पहचानना सीख लिया। यही नहीं, वह इन पक्षियों के मधुर संगीत का भी आनंद लेने लगा। उसने स्पर्श द्वारा विभिन्न पौधों और फूलों को भी पहचानना सीखा।

प्राकृतिक वस्तुओं के इस सामान्य ज्ञान के बाद पादरी ने लुई को संगीत सिखाना आरंभ किया। धार्मिक भजनों द्वारा ही उसे यह संगीत-शिक्षा दी जाती थी जिसके फलस्वरूप धर्म में उसकी रुचि बढ़ने लगी। श्री पालूइ उसे 'बाइबल' से कहानियां पढ़कर सुनाते और विभिन्न पात्रों का ऐसा सजीव वर्णन करते कि उसके मन में उनका एक चित्र-सा अंकित हो जाता। वे उसे विस्तारपूर्वक बताते कि किस कहानी का वास्तविक अर्थ क्या है और उससे कौन-सी नैतिक शिक्षा मिलती है। इस धार्मिक शिक्षा के कारण लुई के मन में ईश्वर के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई जो आगे चलकर निरंतर बढ़ती गई। वह 'बाइबल' की कहानियों और धार्मिक कृत्यों में विशेष रुचि लेने लगा।

पादरी की उक्त धार्मिक शिक्षा का बालक लुई के जीवन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। इसके फलस्वरूप उसकी वह निराशा तथा उदासी दूर हुई जो दृष्टिहीनता के कारण उसके मन पर छाई हुई थी। उसे यह अनुभव होने लगा कि दृष्टिहीन होते हुए भी वह अपने जीवन में बहुत काम कर सकता है, उसका जीवन व्यर्थ नहीं है। उसके बाल-मन पर ईसा की उदारता, क्षमाशीलता, स्नेह, दया और नि:स्वार्थता का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उसने तभी से ईसा को अपने जीवन का आदर्श बना लिया और उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि ईश्वर उसकी सहायता अवश्य करेगा। इस विश्वास के कारण उसकी उदासी तथा निराशा का अंत हुआ; उसे दृष्टिहीनता पर विजय पाने की प्रेरणा मिली और वह प्रसन्न रहने लगा। इस प्रकार पादरी द्वारा दी गई धार्मिक शिक्षा के परिणामस्वरूप जीवन के प्रति लुई के दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन हुआ और बाल्यावस्था से मृत्यु तक वह सदैव धर्मपरायण व्यक्ति बना रहा।

लुई की धर्मनिष्ठा और प्रतिभा से पादरी पालूइ बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि वे उसे और अधिक शिक्षा दिलाने का प्रयास करेंगे। उस समय 'कूरे' में एक ही स्कूल था जिसके प्रधानाध्यापक श्री आंतूआन बशरे (Antoine Becheret) थे। श्री पालूइ ने उनसे अनुरोध किया कि वे लुई को अपने स्कूल में दाखिल कर लें। उस समय सामान्य बालकों के साथ किसी दृष्टिहीन बालक का स्कूल में पढ़ना एक असाधारण बात थी। यह वह समय था जब बहुत कम दृष्टिवान बालक शिक्षा प्राप्त कर पाते थे। ऐसी स्थिति में एक दृष्टिहीन बालक के स्कूल में पढ़ने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। परंतु लुई को स्कूल में प्रवेश की अनुमति मिल गई। इसका कारण यह था कि श्री बशरे गांव के पादरी का बहुत सम्मान करते थे, अत: उन्होंने लुई को शिक्षा देने का उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया।

लगभग आठ वर्ष की आयु में लुई ने अपने गांव के स्कूल में प्रवेश किया।

निश्चय ही यह उसके जीवन की अत्यधिक महत्त्वपूर्ण घटना थी। उसे एक ऐसा अधिकार मिला था जिसे पाना उस समय एक दृष्टिहीन बालक के लिए असंभव समझा जाता था। पहले दिन स्कूल में प्रवेश करने पर लुई के मन में क्या भावनाएं उठीं, इसका विवरण कहीं उपलब्ध नहीं होता। हां, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कुछ समय तक वह स्कूल में सहमा-सहमा-सा रहा, किंतु शीघ्र ही उसने अपने आप को नए वातावरण के अनुकूल बना लिया और वह स्कूल में पढ़ाए जाने वाले विषयों में विशेष रुचि लेने लगा।

लुई जानता था कि उसके सभी साथी घर में पुस्तकें पढ़कर पाठ्य विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जबकि उसके लिए यह संभव नहीं है। इसी कारण वह शिक्षकों के एक-एक शब्द को अत्यधिक ध्यानपूर्वक सुनता और उनके द्वारा बताई गई बातों को अपने मन में बिठाने का प्रयत्न करता। इस मानसिक प्रयास से लुई को बहुत लाभ हुआ। इसके फलस्वरूप उसका मस्तिष्क सदैव क्रियाशील रहने लगा और उसमें तर्क-शक्ति, किसी एक विषय पर ध्यान केंद्रित करने की क्षमता और तथ्यों को शीघ्र ग्रहण करने तथा अधिक समय तक याद रखने की शक्ति उत्पन्न हुई। इन्हीं सब मानसिक क्षमताओं के कारण लुई अपनी कक्षा में सदा सब से आगे रहा। वह बड़े आत्म-विश्वास से शिक्षकों के सभी प्रश्नों के उत्तर देता और कभी-कभी उनके संबंध में अपने विचार भी प्रकट करता। श्री बशरे उसकी इस प्रतिभा एवं कुशाग्रबुद्धि से बहुत प्रभावित हुए।

इस प्रकार लगभग दो वर्ष तक लुई ने 'कूरे' के स्कूल में सामान्य बालकों के साथ शिक्षा ग्रहण की जिसके फलस्वरूप उसका पर्याप्त मानसिक विकास हुआ। इस स्कूल में उसकी जिन मानसिक शक्तियों का विकास हुआ था वे उसके भावी जीवन में – विशेषतः ब्रेल लिपि के आविष्कार में – बहुत सहायक सिद्ध हुईं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उक्त स्कूल में प्राप्त शिक्षा का लुई के संपूर्ण जीवन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

•

अध्याय-4

पैरिस के अंधविद्यालय में प्रवेश

श्री पालूइ तथा श्री बशरे दोनों ही लुई की शैक्षणिक प्रगति से बहुत प्रभावित हुए थे। इसी कारण वे चाहते थे कि लुई अपने गांव से बाहर किसी अन्य स्कूल में और अधिक शिक्षा प्राप्त करे। शिक्षा के क्षेत्र में इन दोनों व्यक्तियों की विशेष रुचि थी, अतः वे जानते थे कि दृष्टिहीन बच्चों के लिए पैरिस में एक स्कूल है। यह वही स्कूल था जिसकी स्थापना श्री वालोंतं ओए ने 1784 में की थी। श्री पालूइ तथा श्री बशरे ने लुई के पिता से अनुरोध किया कि वे उसे अधिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए इस स्कूल में भेज दें। यद्यपि लुई के पिता इन दोनों व्यक्तियों का बहुत आदर करते थे, फिर भी उन्हें उनका यह प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा। इसके दो कारण थे। पहला कारण तो यह था कि लुई अभी तक अपने परिवार से कभी अलग नहीं हुआ था, अतः उसके पिता को संदेह था कि वह उनसे दूर अपरिचित स्थान पर अकेला रह सकेगा या नहीं। इसके अतिरिक्त वे उस स्कूल के संबंध में कुछ नहीं जानते थे, इसलिए वे अपने बच्चे को वहां अकेला नहीं छोड़ना चाहते थे। परंतु श्री बशरे तथा श्री पालूइ ने उन्हें समझाया कि यदि लुई हमेशा इसी गांव में रहा तो उसकी प्रतिभा नष्ट हो जाएगी और वह अपने जीवन में कभी आत्म-निर्भर नहीं हो सकेगा। अंततः लुई के पिता ने उनका अनुरोध स्वीकार कर लिया और वे उक्त अंधविद्यालय के संबंध में अधिकारियों से जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे। यह जानकारी मिल जाने के पश्चात् उन्होंने लुई को उस स्कूल में भेजने का निर्णय किया।

15 जनवरी, 1819 को अधिकारियों ने लुई को इस स्कूल में प्रवेश की अनुमति दे दी थी, किंतु कुछ कठिनाइयों के कारण वह 15 फ़रवरी से पहले इसमें दाखिल नहीं ले सका। एक महीने का यह समय लुई के परिवार के लिए निश्चय ही बड़ा कठिन रहा होगा। लुई उस समय केवल दस वर्ष का था। इतनी छोटी आयु में

अपने दृष्टिहीन बच्चे को एक अपरिचित संस्था में,अनजान लोगों के बीच बिल्कुल अकेला छोड़ देना माता-पिता के लिए कोई सरल कार्य नहीं था। परंतु वे जानते थे कि लुई को अधिक शिक्षा दिलाने का यही एकमात्र उपाय है, अत: उसके भविष्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने उसे इस स्कूल में भेजने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

अंततः 15 फ़रवरी, 1819 का वह दिन भी आ गया जब लुई को अपना घर छोड़कर पैरिस के अंधविद्यालय के लिए रवाना होना था। सुबह से ही उसके माता-पिता और भाई-बहन उदास थे। पहली बार उनका लाड़ला उनसे दूर, एक अलग स्थान पर बिल्कुल अपरिचित लोगों में रहने के लिए जा रहा था। घर के सामने ही घोड़ा-गाड़ी तैयार खड़ी थी जिसमें बैठकर लुई अपने पिता के साथ पैरिस जाने वाला था। मां, भाई और बहनों की आंखें आंसुओं से गीली हो रही थीं। यह सोचकर उनका दिल बैठा जा रहा था कि वे अब कई महीनों तक अपने लाड़ले लुई को नहीं देख पाएंगे। अंततः लुई और उसके पिता को लेकर घोड़ा-गाड़ी चल पड़ी और जो लोग पीछे छूट गए वे तब तक उसकी ओर देखते रहे जब तक वह बिल्कुल अदृश्य न हो गई।

इस तरह 15 फ़रवरी, 1819 को पहली बार लुई ने उस अंधविद्यालय में प्रवेश किया जहां उसे अपने जीवन का अधिकांश समय बिताना था और अपने दृष्टिहीन भाई-बहनों के लिए शताब्दियों से बंद ज्ञान के द्वार खोलने थे। परंतु तब वह यह सब कुछ नहीं जानता था। उसके सामने थे अपरिचित लोग जिनमें उसे अपने माता-पिता और भाई-बहनों से अलग रहना था। उसका बाल-मन गहरी उदासी के बोझ से दबा जा रहा था। और फिर वह घड़ी भी आ गई जो लुई के लिए सब से कठिन थी। उसके वृद्ध पिता ने उसे गले लगाया, चूमा और आंखों में आंसू लिए स्कूल से चले गए!

लुई अभी पूरी तरह संभल भी नहीं पाया था कि उसने अपने कंधे पर किसी व्यक्ति के भारी हाथ के स्पर्श का अनुभव किया। यह हाथ उस पथ-प्रदर्शक का था जिसे लुई को स्कूल के सभी कमरे और अन्य वस्तुएं दिखाने का काम सौंपा गया था। उसकी सहायता से लुई ने अपने स्कूल के नए वातावरण का कुछ परिचय प्राप्त किया, पर इस से उसके मन की उदासी दूर नहीं हुई। उसे सब कुछ बहुत विचित्र और अप्रिय-सा लग रहा था। अपने घर में वह सब की आवाजें पहचानता था, पर यहां सभी आवाजें उसके लिए बिल्कुल नई थीं, बिल्कुल अनजानी। अपने गांव में उसे रास्ता ढूंढ़ने में कोई परेशानी नहीं होती थी, किंतु यहां आ कर वह बिल्कुल असहाय हो गया था। स्कूल के 90 छात्र-छात्राओं में वह सब से छोटा था और यहां कोई भी उसे नहीं जानता था। अपने घर में वह सभी के लाड़-प्यार का केंद्र था, पर

यहां किसी को उसकी चिंता नहीं थी। इतना ही नहीं, यहां उसे स्कूल के निदेशक, डॉ. सबास्तीयं ग्वी (Sebastien Guillie) के कड़े अनुशासन में रहना पड़ता था और उनके सभी आदेशों का पालन करना पड़ता था। उसकी इच्छा की यहां किसी को कोई परवाह नहीं थी। उसके घर और गांव से कितना भिन्न था यह स्कूल का नया संसार! उसकी इच्छा होती कि वह तुरंत यहां से घर भाग जाए और फिर कभी न लौटे, पर यह सब कहां संभव था! उसे तो अब इसी कठोर और निर्मम संसार में जीवन बिताना था! धीरे-धीरे उसने अपने आप को इस नए वातावरण के अनुरूप ढाल लिया।

लुई ने जब इस अंधविद्यालय में प्रवेश किया तब तक उसे स्थापित हुए लगभग 35 वर्ष बीत चुके थे। सारे फ्रांस में इस स्कूल की विशेष ख्याति थी। इतना ही नहीं, संपूर्ण यूरोप में इसका बहुत महत्त्व था। परंतु इस स्कूल का वातावरण विद्यार्थियों के स्वास्थ्य के लिए अत्यधिक हानिकारक था। स्कूल का भवन बहुत ही पुराना था और जिन कमरों में विद्यार्थियों को रहना पड़ता था वे वास्तव में छोटी-छोटी खोलियां थीं। उनमें हवा और प्रकाश का प्रवेश बहुत कम होता था। सारे स्कूल में सीलन इतनी अधिक थी कि विद्यार्थियों के हाथ दीवारों से चिपकने लगते थे। भोजन, पानी, शौच, स्नान आदि का प्रबंध भी नितांत असंतोषप्रद था। विद्यार्थियों को स्कूल से बाहर घूमने के लिए बहुत ही कम ले जाया जाता था। माता-पिता भी अपने बच्चों को प्रायः घर नहीं ले जाते थे। इस प्रकार सभी विद्यार्थियों को अधिक समय तक स्कूल के इसी दूषित और स्वास्थ्य के लिए घातक वातावरण में रहना पड़ता था।

1821 में इस स्कूल के विषय में जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी उसमें स्पष्ट रूप से बताया गया था कि इसमें रहने वाले अधिकतर छात्र-छात्राओं का स्वास्थ्य बहुत ख़राब है। यही नहीं, स्वास्थ्य के लिए घातक इस वातावरण में रहने के कारण स्कूल में ही बहुत-से विद्यार्थियों की मृत्यु भी हो जाती थी। उस समय स्कूल के अधिकारी तथा संचालक यह अनुभव नहीं करते थे कि शिक्षा देने के साथ-साथ विद्यार्थियों के लिए स्वच्छ तथा स्वास्थ्यवर्धक वातावरण बनाए रखना भी स्कूल का अनिवार्य कर्तव्य है। इस प्रकार आत्म-निर्भरता और ज्ञान के प्रकाश की खोज में जो विद्यार्थी इस स्कूल में आते थे उनका स्वास्थ्य प्रायः ख़राब हो जाता था और उनमें से कुछ असमय ही मृत्यु के गहन अंधकार में खो जाते थे।

तो यह था वह नया संसार जिसमें अपने घर के स्वास्थ्यवर्धक और प्यारभरे वातावरण को छोड़कर लुई ने प्रवेश किया था। अपने अनेक साथियों की भांति उसे भी इसमें रहने का बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा! केवल 43 वर्ष की अल्पायु में ही वह इस संसार से विदा हो गया! परंतु इसके साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि

इसी स्कूल में रहकर उसने वह अद्‌भुत आविष्कार किया जिसके फलस्वरूप बाद में उसे विश्वव्यापी ख्याति मिली और संसार के महापुरुषों में उसकी गणना हुई। यहीं रहकर उसमें धैर्य, दृढ़ इच्छाशक्ति, परिश्रमशीलता आदि उन गुणों का विकास हुआ जिनके कारण उसे आगे बहुत यश तथा सम्मान प्राप्त हुआ।

अपने गांव के पादरी पालूई तथा स्कूल के शिक्षक बशरे द्वारा दी गई शिक्षा के परिणामस्वरूप लुई में जो मानसिक शक्तियां विकसित हुई थीं वे पेरिस के अंधविद्यालय में उसके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुईं। इस स्कूल में उसने संगीत, इतिहास, भूगोल, गणित, फ्रेंच, लेटिन आदि विषयों का बड़े मनोयोग से अध्ययन किया और वर्कशॉप में स्लीपर बनाना भी सीखा। इन सब विषयों का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे निरंतर कठोर परिश्रम करना पड़ा। पुस्तकों की कमी के कारण लुई को भी अपने अन्य साथियों की भांति मौखिक विधि से ही सभी विषयों की शिक्षा प्राप्त करनी पड़ी। प्रत्येक विषय से संबंधित कुछ आवश्यक तथ्यों को कंठस्थ कर लेना ही उस समय दृष्टिहीनों की शिक्षा का मुख्य साधन था। ऐसी स्थिति में सभी विद्यार्थियों को एक साथ किसी विषय की शिक्षा देना बहुत कठिन होता था। इस समस्या का समाधान करने के लिए एक विशेष शिक्षा-विधि का प्रयोग किया जाता था। जिसे 'पारस्परिक शिक्षण' ('Mutual Instruction') की संज्ञा दी जाती थी। सर्वप्रथम अध्यापक कुछ थोड़े-से प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को किसी विषय का ज्ञान कराते थे। इसके पश्चात् ये विद्यार्थी - जिन्हें 'प्रोफ़ेसर' कहा जाता था - कुछ अन्य छात्र-छात्राओं को उसी विषय की शिक्षा देते थे। फिर ये विद्यार्थी - जिन्हें 'रिपीटर' कहा जाता था - दूसरे छोटे विद्यार्थियों को वे ही विषय सिखाते थे। इस प्रकार बहुत धीमी गति से सभी विद्यार्थियों की शिक्षा जारी रहती थी। वस्तुत: उस समय दृष्टिहीनों के लिए बहुत कम पुस्तकें उपलब्ध होने के कारण स्कूल के अधिकारियों को इस विशेष शिक्षण-विधि का सहारा लेना पड़ता था।

'पारस्परिक शिक्षण' की उपर्युक्त विधि के फलस्वरूप लुई शीघ्र ही अपने शिक्षकों के संपर्क में आ गया। वह प्रारंभ से परिश्रमी तथा कुशाग्रबुद्धि तो था ही, अत: पढ़ाए जाने वाले विषयों को समझने और याद करने की उसकी गति इतनी तीव्र थी कि सभी शिक्षक उस से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने उसे उन छात्रों में सम्मिलित कर लिया जिन्हें वे पढ़ाते थे। इस प्रकार लुई ने ग्रीक, लेटिन तथा फ्रैंच के व्याकरण और इतिहास, भूगोल, तर्कशास्त्र गणित आदि विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त की। इसके अतिरिक्त उसने प्यानो तथा ऑर्गन बजाना भी सीखा। इन सब विषयों के साथ-साथ लुई ने वर्कशॉप में कपड़ा बुनने और स्लीपर बनाने की हस्तकलाओं का भी ज्ञान प्राप्त किया।

डॉ. आलेकज़ांद्र फ्रांसूआ रने पिनिए (Alexandre Francois-Rene Pignier) ने - जो डॉ. सबास्तीयं ग्वी के बाद स्कूल के निदेशक नियुक्त हुए थे - अपने संस्मरणों में लुई की बहुत प्रशंसा की है। उनका कथन है कि वह प्रत्येक विषय को शीघ्र तथा सरलतापूर्वक समझ लेता था और उसकी कल्पना एवं तर्कशक्ति बहुत तीव्र थी। अपने से कहीं अधिक आयु वाले छात्रों के साथ प्रतियोगिता करके उसने विभिन्न विषयों में बहुत-से पुरस्कार प्राप्त किए थे। इस प्रकार अपनी लगन एवं परिश्रमशीलता के परिणामस्वरूप कुछ ही वर्षों में लुई सारे स्कूल में अत्यधिक प्रतिभाशाली छात्र माना जाने लगा और सभी विद्यार्थी तथा शिक्षक उसका आदर करने लगे थे।

•

अध्याय-5

अध्यापन-कार्य

लगभग नौ वर्ष तक पैरिस के अंधविद्यालय में लुई ब्रेल ने विभिन्न विषयों तथा संगीत और हस्तकलाओं का ज्ञान प्राप्त किया। अब वे बाल्यावस्था से यौवन में प्रवेश कर चुके थे और उनके जीवन में एक नया मोड़ आ गया था। अन्य व्यक्तियों की भांति उनके समक्ष भी रोज़गार की समस्या उपस्थित हुई, परंतु इस समस्या को हल करने के लिए उन्हें अधिक संघर्ष नहीं करना पड़ा। प्रतिभाशाली छात्र के रूप में वे पहले ही काफ़ी समय से विद्यार्थियों को पढ़ाने का कार्य कर रहे थे। उनका यह कार्य अवैतनिक ही था, किंतु इसके कारण स्कूल के सभी शिक्षक उन से बहुत प्रसन्न थे। वे जानते थे कि लुई ब्रेल छात्र-छात्राओं को भली-भांति पढ़ाते ही नहीं, अपितु उनके प्रति बहुत स्नेह भी रखते हैं। इसी कारण स्कूल के तत्कालीन निदेशक, डॉ. पिनिए ने 8 अगस्त, 1828 को उन्हें 'सहायक शिक्षक' ('Tutor') नियुक्त कर दिया। उसी दिन से पैरिस के अंधविद्यालय में लुई ब्रेल ने विधिवत् अध्यापन-कार्य आरंभ किया था और जीवन के अंत तक वे इसी विद्यालय में शिक्षक बने रहे।

सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त हो जाने से लुई ब्रेल की आर्थिक स्थिति में अधिक अंतर नहीं पड़ा। इसका कारण यह था कि उस समय इस स्कूल के सहायक शिक्षकों को बहुत कम वेतन दिया जाता था। उन्हें प्रतिमास तीन से आठ फ़्रेंक्स तक वेतन मिलता था और वह भी नियम-विरुद्ध कोई कार्य करने पर अंशतः अथवा सारा काट लिया जाता था। इसके अतिरिक्त उन्हें अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक महत्त्व भी नहीं दिया जाता था। अन्य छात्र-छात्राओं की तुलना में उन्हें कोई विशेषाधिकार नहीं दिए जाते थे और उन पर भी वे सभी नियम लागू होते थे जिनका पालन दूसरे विद्यार्थियों को करना पड़ता था। अधिकारियों से अनुमति लिए बिना वे

किसी से मिल नहीं सकते थे और न ही स्कूल से बाहर जा सकते थे। सहायक शिक्षकों को सभी विद्यार्थियों के साथ ही भोजन करना पड़ता था और उनके रहने के लिए अलग कमरा भी नहीं दिया जाता था। कोई भूल होने पर उन्हें भी अन्य विद्यार्थियों की भांति ही दंड दिया जाता था। हां, उन्हें वर्कशॉप में जाने के लिए बाध्य नहीं किया जाता था और उनकी ड्रेस भी कुछ भिन्न होती थी। इन दो अधिकारों को छोड़कर उन्हें विद्यार्थियों की तुलना में अन्य कोई विशेषाधिकार प्रदान नहीं किया जाता था।

इन्हीं कठिन परिस्थितियों में लुई ब्रेल कई वर्षों तक पैरिस के अंधविद्यालय में सहायक शिक्षक के रूप में कार्य करते रहे। इसके पश्चात् उन्हें अध्यापक नियुक्त कर दिया गया और उनका वेतन 25 फ़्रेंक्स प्रतिमास हो गया। इस से उनकी आर्थिक स्थिति में कुछ सुधार तो अवश्य हुआ, किंतु वे अब भी बड़ी कठिनाई से अपना खर्चा चला पाते थे। फिर भी वे अपना कार्य पूरी ईमानदारी और निष्ठा से करते थे, क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य अपने दृष्टिहीन बहन-भाइयों की सहायता करना ही था, धन कमाना नहीं। स्कूल के निदेशक, डॉ. पिनिए तथा लुई ब्रेल के मित्र, श्री इपोलित कोल्ता (Hippolyte Coltat) ने शिक्षक के रूप में उनकी बहुत प्रशंसा की है। इन दोनों व्यक्तियों ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि लुई ब्रेल में कुछ ऐसी विशेषताएं थीं जो उस समय के अन्य शिक्षकों में नहीं पाई जाती थीं।

जिस समय लुई ब्रेल शिक्षक का कार्य कर रहे थे, उस युग में विद्यार्थियों को कठोर शारीरिक दंड देना अनिवार्य समझा जाता था। तब अधिकतर शिक्षकों का दृढ़ विश्वास था कि शारीरिक दंड दिए बिना विद्यार्थियों को कुछ भी नहीं सिखाया जा सकता। इसी कारण वे डंडे का अधिक-से-अधिक प्रयोग करते थे और ज़रा-सी भूल हो जाने पर भी उनकी बहुत पिटाई करते थे। पैरिस के अंधविद्यालय में भी यही स्थिति थी।

परंतु लुई ब्रेल ने शारीरिक दंड के इस सिद्धांत को कभी स्वीकार नहीं किया। उनका विचार था कि छात्र-छात्राओं की कठिनाइयों को समझकर स्नेहपूर्वक उनकी सहायता करने से ही उन्हें भली-भांति शिक्षा दी जा सकती है। आज हमें यह बात बहुत साधारण-सी प्रतीत होती है, किंतु उस युग में यह एक क्रांतिकारी विचार था जिसका समर्थन बहुत ही कम शिक्षक करते थे। पैरिस के अंधविद्यालय के लिए तो यह बिल्कुल नया सिद्धांत था। विद्यार्थियों को शारीरिक दंड दिए बिना उन्हें कुछ सिखाने की वहां कोई कल्पना भी नहीं करता था। यही कारण है कि जब लुई ब्रेल ने व्यक्तिगत रूप से विद्यार्थियों की कठिनाइयों को समझकर स्नेहपूर्वक उन्हें शिक्षा देना आरंभ किया तो सभी विद्यार्थी उनका अत्यधिक सम्मान करने लगे। वे उनकी

कक्षाओं में जाकर आनंद का अनुभव करते और उनके समस्त आदेशों का पालन करना अपना सब से बड़ा कर्तव्य मानते थे। प्रत्येक छात्र सदा यही प्रयत्न करता था कि वह अपने व्यवहार तथा कार्य द्वारा लुई ब्रेल जैसे दयालु एवं सुयोग्य शिक्षक को प्रसन्न रख सके।

इस प्रकार अपनी नवीन शिक्षा-विधि के फलस्वरूप लुई ब्रेल सारे स्कूल में बहुत लोकप्रिय शिक्षक हो गए। यद्यपि उन्हें संगीत, इतिहास, भूगोल, गणित, तर्कशास्त्र, व्याकरण आदि विभिन्न विषय पढ़ाने पड़ते थे, फिर भी पढ़ाते समय उनके विचारों में कोई अस्पष्टता और अव्यवस्था नहीं आती थी। पढ़ाने से पूर्व वे प्रत्येक पाठ को बहुत परिश्रमपूर्वक भली-भांति तैयार कर लेते थे। अपने विचारों को स्पष्ट रूप से तथा कम-से-कम शब्दों में व्यक्त करना उनके अध्यापन की प्रमुख विशेषता थी। वे अपने विद्यार्थियों को भी व्यवस्थित ढंग से और बहुत संक्षेप में अपने विचार प्रकट करने का परामर्श देते थे।

जब लुई ब्रेल पैरिस के अंधविद्यालय में अध्यापन-कार्य कर रहे थे उस समय इस विद्यालय के संस्थापक, श्री वालोंतं ओए की विशिष्ट विधि द्वारा सामान्य दृष्टिगत लिपि के अक्षरों को विस्तृत आकार में मोटे कागज़ पर उभारकर विशेष प्रकार की पुस्तकें तैयार की जाती थीं और मुख्यत: इन्हीं पुस्तकों के माध्यम से दृष्टिहीन विद्यार्थियों को पढ़ना-लिखना सिखाया जाता था। ऐसी पुस्तकों को केवल पढ़ने में ही अत्यधिक समय नहीं लगता था, अपितु उक्त विधि द्वारा लिखने के लिए भी बहुत अधिक कागज़ व्यय करना पड़ता था। इसी कारण लुई ब्रेल अपने विद्यार्थियों से सदा यही कहा करते थे कि हमें कम-से-कम शब्दों में अपने विचार व्यक्त करने चाहिए। उन्होंने जो कुछ लिखा है उससे भी यह बात भली-भांति प्रमाणित हो जाती है कि वे स्वयं अपने विचारों को बहुत संक्षेप में प्रस्तुत किया करते थे। उनका सदा यही प्रयास रहता था कि उनके विद्यार्थी भी कम-से-कम शब्दों में अपने विचार व्यक्त करने की उपयोगी कला सीख लें। वस्तुत: स्वयं दृष्टिहीन होने के कारण लुई ब्रेल दृष्टिहीन विद्यार्थियों की विशेष समस्याओं को अच्छी तरह समझते थे और बड़े धैर्यपूर्वक उनका समाधान करने का प्रयास करते थे। यही कारण है कि वे अपने अध्यापन-कार्य में अत्यधिक सराहनीय सफलता प्राप्त कर सके और उन्हें छात्र-छात्राओं का बहुत सम्मान प्राप्त हुआ।

●

अध्याय-6

संगीत-साधना

अध्यापन-कार्य के साथ-साथ संगीत में भी लुई ब्रेल अधिक-से-अधिक निपुणता प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे। बाल्यावस्था से ही संगीत में उनकी विशेष रुचि थी। वे केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं, अपितु जीविका कमाने के लिए भी संगीत में विशेष दक्षता प्राप्त करना चाहते थे। पैरिस के अंधविद्यालय में शिक्षक नियुक्त होने से पूर्व वे संगीत को ही अपना मुख्य व्यवसाय बनाने का विचार कर रहे थे। यद्यपि अध्यापन-कार्य आरंभ करने के बाद उन्होंने अपना यह विचार छोड़ दिया था, फिर भी वे निरंतर संगीत-साधना करते रहे और इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली।

ऐसा प्रतीत होता है कि गायन की अपेक्षा वाद्य-संगीत में लुई ब्रेल की अधिक रुचि थी। वे प्यानो तथा ऑर्गन बजाने में विशेष रूप से निपुण थे। पैरिस के स्कूल में आने के तुरंत बाद ही उन्होंने इन वाद्यों को बजाने का प्रशिक्षण लेना आरंभ कर दिया था। जब वे इस स्कूल में अध्यापक नियुक्त हो गए तब भी यह प्रशिक्षण जारी रहा। डॉ. पिनिए ने इस संबंध में उनकी बहुत सहायता की थी। उन्होंने पैरिस के कुछ महान संगीतज्ञों से अनुरोध किया था कि वे लुई ब्रेल को संगीत की शिक्षा दें। इन संगीतज्ञों से काफ़ी समय तक शिक्षा प्राप्त करने के कारण लुई ब्रेल प्यानो तथा ऑर्गन बजाने में बहुत निपुण हो गए। उनकी इस निपुणता से डॉ. पिनिए की बहन इतनी प्रभावित हुईं कि वे उन्हें पैरिस की कुछ फ़ैशनेबल पार्टियों में प्यानो एवं ऑर्गन बजाने के लिए ले जाने लगीं। इन पार्टियों में श्रोतागण लुई ब्रेल की संगीत-कला पर मुग्ध हो जाते और उनकी बहुत प्रशंसा करते थे। लुई ब्रेल स्वयं भी इन पार्टियों में प्यानो तथा ऑर्गन बजाकर आनंद का अनुभव करते थे, किंतु अधिक लोगों से मिलने

में उन्हें बहुत संकोच होता था। बाल्यावस्था से ही लोगों से अलग अंधविद्यालय में रहने के कारण वे कुछ अंतर्मुखी स्वभाव के हो गए थे, अत: बार-बार बहुत-से अपरिचित व्यक्तियों से मिलना और उनके ध्यान का केंद्र बनना उन्हें अधिक अच्छा नहीं लगता था।

फिर भी पैरिस के कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के समक्ष संगीत-कला के प्रदर्शन के फलस्वरूप लुई ब्रेल को पर्याप्त ख्याति मिली थी। उनकी इस संगीत-कला से प्रभावित होकर पैरिस के तीन बड़े गिरजाघरों के अधिकारियों ने उन्हें ऑर्गन बजाने के लिए नियुक्त कर दिया था। प्रारंभ से ही धर्मनिष्ठ व्यक्ति होने को कारण लुई ब्रेल गिरजाघर में ऑर्गन बजाकर हार्दिक आनंद का अनुभव करते थे। वे रविवार की बड़ी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा किया करते थे, क्योंकि उसी दिन उन्हें गिरजाघर में ऑर्गन बजाने का अवसर मिलता था। वे यह कार्य अपनी संगीत-कला के प्रदर्शन के लिए नहीं, अपितु ईश्वर की आराधना के उद्देश्य से किया करते थे। फिर भी श्रोताओं को उनका बजाया हुआ ऑर्गन सुनकर आध्यात्मिक आनंद का अनुभव होता था।

गिरजाघरों में ऑर्गन बजाने के अतिरिक्त लुई ब्रेल पैरिस के अंधविद्यालय में विद्यार्थियों को संगीत की शिक्षा भी दिया करते थे। उनके मित्र, श्री इपोलित कोल्ता ने अपने संस्मरणों में प्यानो तथा ऑर्गन बजाने की उनकी कला और विद्यार्थियों को इन वाद्यों का प्रशिक्षण देने की उनकी श्रेष्ठ पद्धति का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए उनकी बहुत प्रशंसा की है। वस्तुत: बाल्यकाल से जीवन के अंत तक संगीत में लुई ब्रेल की रुचि बनी रही और वे इस कला में दक्षता प्राप्त करने के लिए यथासंभव निरंतर साधना भी करते रहे।

•

अध्याय-7

अनुकरणीय महान व्यक्तित्व

अभी तक हमने लुई ब्रेल की प्रतिभा, परिश्रमशीलता, कुशाग्रबुद्धि, तर्कशक्ति, उदारता, स्नेहशीलता, धर्मनिष्ठा आदि कुछ विशिष्ट गुणों की संक्षिप्त चर्चा की है। इन वैयक्तिक गुणों के अतिरिक्त उनके जीवन के संबंध में कुछ ऐसे प्रश्न भी उठते हैं जिनके समुचित उत्तर खोजने पर हमें उनके व्यक्तित्व की पर्याप्त जानकारी मिल सकती है। इनमें से कुछ प्रश्न निम्नलिखित है:

- क्या वे अपनी सामाजिक परिस्थितियों से संतुष्ट थे?
- क्या दृष्टिहीन होते हुए भी वे अपने जीवन को सुखी और सफल मानते थे? उनका चरित्र तथा स्वभाव कैसा था और उनके मित्रगण उन्हें किस दृष्टि से देखते थे?
- क्या उन्होंने विवाह किया था अथवा क्या उन्हें जीवन में कभी किसी नारी का प्रेम प्राप्त हुआ था?

ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका लुई ब्रेल की जीवनी लिखने वाले के लिए बहुत महत्त्व है, क्योंकि इन्हीं के प्रामाणिक उत्तर प्राप्त करने से हमें उनके वास्तविक व्यक्तित्व और जीवन तथा जगत् के प्रति उनकी प्रतिक्रिया का ठीक-ठीक ज्ञान हो सकता है।

पिछले पचास वर्षों में लुई ब्रेल के व्यक्तित्व और कृतित्व पर जो शोध-कार्य हुआ है उसके द्वारा उपलब्ध नवीन तथ्यों के आधार पर उपर्युक्त प्रश्नों के निश्चित उत्तर दिए जा सकते हैं। नवीनतम शोध के अनुसार, इस समय लुई ब्रेल के चौबीस व्यक्तिगत पत्र उपलब्ध हैं जो पैरिस के अंधविद्यालय के संग्रहालय में रखे हैं। इनमें से दस पत्र तो उन्होंने अपने हाथ से सामान्य दृष्टिगत लिपि में लिखे थे, आठ पत्र

श्रुतलेखकों से तथा दो अपने बड़े भाई से लिखवाए थे और चार उस राफ़ीग्राफ (Raphigraphe) द्वारा लिखे थे जिसके आविष्कार में उन्होंने बहुत सहायता की थी। इस राफ़ीग्राफ की विस्तृत चर्चा हम अध्याय 13 में करेंगे।

लुई ब्रेल के ये व्यक्तिगत पत्र हमारे समक्ष उनके व्यक्तित्व के अनेक आयामों को स्पष्टत: प्रस्तुत करते हैं। इन पत्रों के अतिरिक्त उनके मित्र, इपोलित कोल्ता और पैरिस के अंधविद्यालय के तत्कालीन निदेशक, डॉ. पिनिए द्वारा लिखित संस्मरणों से भी हमें लुई ब्रेल के व्यक्तित्व के विषय में काफ़ी जानकारी प्राप्त होती है। यहां हम इन सब स्रोतों के आधार पर उपर्युक्त प्रश्नों में से कुछ प्रश्नों के प्रामाणिक उत्तर देने का प्रयास करेंगे। जहां तक हमें ज्ञात है, लुई ब्रेल ने अपनी सामाजिक परिस्थितियों और दृष्टिहीनता के विरुद्ध कोई गंभीर असंतोष अथवा दु:ख व्यक्त नहीं किया था। वस्तुत: वे अपने संपूर्ण जीवन में इतने अधिक कार्य-व्यस्त रहे कि उन्हें ऐसा करने का कभी अवसर ही नहीं मिला। शायद यही कारण था कि दीर्घ काल तक अस्वस्थ रहने के बावजूद वे प्राय: प्रसन्न और संतुष्ट ही रहते थे। वे अपने सुख-दु:ख के संबंध में बहुत कम सोचते थे, क्योंकि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उन्होंने संतोषपूर्वक जीने का अभ्यास कर लिया था। दृष्टिहीनता के कारण उत्पन्न बाधाओं के साथ-साथ वे अपने यौवन-काल से जीवन के अंत तक क्षयरोग से भी निरंतर संघर्ष करते रहे, किंतु फिर भी उन्होंने ईश्वर के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा एवं निष्ठा नहीं छोड़ी और अपने जीवन की कठिनाइयों के संबंध में कभी किसी से कोई शिकायत नहीं की। वे आजीवन सच्चे ईश्वरोपासक तथा धर्मपरायण व्यक्ति बने रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस धर्मनिष्ठा और ईश्वर-भक्ति ने उन्हें क्षयरोग से होने वाली तीव्र शारीरिक पीड़ा सहकर भी जीवन में शांत एवं संतुष्ट रहने का मानसिक बल प्रदान किया था जिसकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रबल संभावना है।

दूसरों के प्रति स्नेह,उदारता, मैत्री, नि:स्वार्थ सेवा आदि सद्गुणों के अतिरिक्त प्रकृति के प्रति लगाव तथा आकर्षण भी लुई ब्रेल के व्यक्तित्व की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। उनके गांव में घर के साथ ही एक बड़ा बगीचा था जिसमें अन्य पेड़-पौधों के अतिरिक्त अंगूर की लताएं भी थीं जिन से उन्हें विशेष लगाव था। अपने पत्रों में उन्होंने इन लताओं के प्रति इस लगाव का स्पष्टत: उल्लेख किया है। अपनी मां को लिखे एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि जब वे घर आएंगे और अंगूर की लताओं को पल्लवित एवं पुष्पित होते हुए देखेंगे तो वे स्वयं भी शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएंगे। वस्तुत: लुई ब्रेल पेरिस के अंधविद्यालय में रहते हुए उसके दूषित वातावरण तथा नगर के कोलाहल से बहुत ऊब जाते थे, अत: अपने गांव जाकर उसके शांत वातावरण में रहने और सुरम्य प्रकृति की गोद में कुछ समय बिताने की उनकी बड़ी

इच्छा होती थी। इसी कारण उन्हें जब भी समय मिलता था तो वे अपने गांव चले जाते थे जहां वे पारिवारिक स्नेह-सुख के साथ-साथ ताजी हवा और सुगंधित वातावरण का भी आनंद प्राप्त करते थे।

इसमें संदेह नहीं कि किसी भी युवक की भांति लुई ब्रेल के मन में भी नारी का प्यार पाने की नैसर्गिक इच्छा अवश्य रही होगी, किंतु उन की इस इच्छा की पूर्ति का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। उनके संबंध में डॉ. पिनिए तथा कोल्ता द्वारा लिखित संस्मरणों में उनके वैवाहिक जीवन अथवा किसी स्त्री के साथ उनके प्रणय का कोई उल्लेख नहीं है। वास्तव में लुई ब्रेल के ख़राब शारीरिक स्वास्थ्य, उनकी निर्धनता और उनके निवास-स्थान (अंधविद्यालय) के संकुचित वातावरण को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उनके लिए वैवाहिक जीवन व्यतीत करना बहुत कठिन था, अत: वे आजीवन अविवाहित ही रहे। दस वर्ष की आयु में पैरिस के अंधविद्यालय में प्रवेश करने के पश्चात् वे अपनी शिक्षा, संगीत-साधना, अध्यापन, ब्रेल लिपि के आविष्कार तथा दृष्टिहीनों के लिए कल्याण-कार्य में सदैव इतने अधिक व्यस्त रहे कि उन्हें घर बसाकर दांपत्य सुख प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिल सका।

बाल्यकाल से ही लुई ब्रेल ने सभी प्रकार से दृष्टहीनों की सहायता करना अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लिया था और वे मृत्यु-पर्यंत इसी उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न रहे। नई लिपि का क्रांतिकारी आविष्कार करके उन्होंने दृष्टिहीनों के लिए शताब्दियों से बंद केवल ज्ञान के द्वार ही नहीं खोले, प्रत्युत स्वयं कठिन परिस्थितियों में जीवन बिताकर भी वे अपने दृष्टिहीन मित्रों की यथासंभव आर्थिक सहायता करते रहे। डॉ. पिनिए और कोल्ता ने उन से संबंधित अपने संस्मरणों में ऐसी कई घटनाओं का उल्लेख किया है जिनसे उनकी उदारता एवं त्याग-भावना का पता चलता है। उदाहरणार्थ, स्वयं आर्थिक कठिनाई का अनुभव करते हुए भी लुई ब्रेल ने गिरजाघर में ऑर्गन बजाने का काम केवल इसलिए छोड़ दिया था कि उनके स्थान पर एक ऐसे दृष्टिहीन व्यक्ति को नियुक्त किया जा सके जिसके पास जीविका कमाने का अन्य कोई साधन नहीं था। इसी प्रकार अपने जीवन की सुख-सुविधाओं की परवाह न करते हुए बड़ी कठिनाई से वे जो कुछ बचा पाए थे उसका एक बहुत बड़ा भाग उन्होंने दृष्टिहीनों के लिए ब्रेल में पुस्तकें लिखवाने में खर्च कर दिया था। इतना ही नहीं, वे नकद धन देकर भी ग़रीब दृष्टिहीनों की सहायता करते थे। उनके निधन के बाद हुई एक विशेष घटना से उनकी इस उदारता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

लुई ब्रेल की मृत्यु के पश्चात् उनके कमरे में एक छोटा-सा संदूक मिला जिस पर लिखा था, ''मेरी मृत्यु के बाद इसे खोले बिना ही नष्ट कर दिया जाए।'' परंतु उनके आदेश के विरुद्ध वह संदूक खोल लिया गया। उसमें बहुत-से ऐसे

काग़ज़ मिले जिनमें दृष्टिहीनों को समय-समय पर दी गई आर्थिक सहायता का विवरण था। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि लुई ब्रेल की उदारता केवल दृष्टिहीनों तक ही सीमित नहीं थी। अपने संपर्क में आने वाले दृष्टिवान व्यक्तियों की भी वे यथासंभव आर्थिक सहायता किया करते थे। अपनी वसीयत में उन्होंने दृष्टिहीनों के लिए कल्याण-कार्य करने वाली संस्थाओं के साथ-साथ कुछ निर्धन दृष्टिवान व्यक्तियों को भी धन देने की व्यवस्था की थी। इन सब बातों से लुई ब्रेल की विशालहृदयता एवं उदारता का स्पष्ट परिचय मिलता है।

उदारता एवं त्याग-भावना के अतिरिक्त सच्चाई, ईमानदारी, कृतज्ञता और मित्रों के प्रति निश्छल स्नेह तथा निष्ठा भी लुई ब्रेल के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएं थीं। यदि वे किसी से कोई सहायता लेते थे तो उसके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना कभी नहीं भूलते थे। उदाहरणार्थ, अपनी ब्रेल लिपि से संबंधित पुस्तकों में उन्होंने चार्ल्स बारबिये (Charles Barbier) के प्रति बार-बार अपना आभार प्रकट किया है, क्योंकि इस लिपि के आविष्कार की मूल प्रेरणा उन्हें बारबिये से ही मिली थी। इसी प्रकार उन्होंने अपने उन सभी मित्रों की सहायता का कृतज्ञतापूर्वक अपनी पुस्तकों में उल्लेख किया है जिन्होंने उनकी ब्रेल लिपि को सुधारने के लिए सुझाव दिए थे। वस्तुत: किसी अन्य व्यक्ति के योगदान को कम महत्त्वपूर्ण बताकर स्वयं श्रेय लेने, अपना महत्त्व बढ़ाने और यश प्राप्त करने का लुई ब्रेल ने कभी प्रयत्न नहीं किया। उनके संपर्क में आने वाले सभी व्यक्ति उनकी इस ईमानदारी तथा कृतज्ञता की भावना के लिए उनकी बहुत प्रशंसा करते थे।

लुई ब्रेल जिन्हें अपना मित्र मानते थे उनकी यथासंभव सहायता करने के लिए भी सदा तैयार रहते थे। उनके मित्र, कोल्ता ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि अपने मित्रों के प्रति लुई ब्रेल के मन में बहुत स्नेह था और वे उनके लिए अपना धन, समय, स्वास्थ्य-सब कुछ त्याग सकते थे। यदि वे अपने किसी मित्र में कोई दुर्गुण देखते थे तो उसके संबंध में स्पष्ट रूप से उसको बताकर उसे उक्त दुर्गुण से मुक्त करना वे अपना आवश्यक कर्तव्य मानते थे। परंतु ऐसा करते समय वे इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि उनके किसी शब्द से मित्र के मन को आघात न पहुंचे। इसी कारण उनके सभी मित्र उनका अत्यधिक सम्मान करते थे और उनके परामर्श को विशेष महत्त्व देते थे।

इस प्रकार उपर्युक्त संपूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि लुई ब्रेल कुशाग्रबुद्धि तथा प्रतिभाशाली आविष्कारक ही नहीं थे, अपितु उदारता, त्याग, सच्चाई, ईमानदारी, विनम्रता, कृतज्ञता, नि:स्वार्थ सेवा, मित्रों के प्रति निष्कपट स्नेह एवं निष्ठा आदि सद्गुणों से परिपूर्ण महान व्यक्ति और 'श्रेष्ठ मनुष्य' भी थे।

•

अध्याय-8

महाप्रयाण और अंतिम श्रद्धांजलि

संसार के अधिकतर महान व्यक्तियों की यह त्रासदी रही है कि उन्हें अपने जीवन में न तो वह सुख-समृद्धि मिली और न ही समुचित मान्यता तथा ख्याति जिसके वे अधिकारी थे। लुई ब्रेल का जीवन इस बात का ज्वलंत उदाहरण है। बाल्यावस्था से अंतिम समय तक उनका संपूर्ण जीवन विभिन्न प्रकार की विपत्तियों, बाधाओं और संकटों से ग्रस्त रहा। मृत्यु-पर्यंत चलने वाले उनके कष्टों और दु:खों की शृंखला उनके बचपन से ही आरंभ हो गई थी। तीन वर्ष की अल्पायु में ही उन्हें नेत्र-ज्योति जैसी जीवन की अमूल्य निधि से वंचित होना पड़ा! इसके पश्चात् अपने जीवन का अधिकतर समय उन्हें पैरिस के अंधविद्यालय के उस वातावरण में बिताना पड़ा जो स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक था। इसी कारण युवावस्था से ही उनका स्वास्थ्य बिगड़ना आरंभ हो गया था। जब वे केवल 26 वर्ष के थे, तभी से उनके शरीर में क्षयरोग के लक्षण प्रकट होने लगे थे। तब तक चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में बहुत कम प्रगति हुई थी और इस घातक रोग का कोई प्रभावी उपचार नहीं ढूंढ़ा जा सका था।

स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक वातावरण में रहने तथा निरंतर कठोर परिश्रम करने के कारण लुई ब्रेल का यह रोग बढ़ता ही गया। लगभग 35 वर्ष की आयु से ही वे काफ़ी अस्वस्थ रहने लगे थे और इसी कारण समय-समय पर स्कूल से छुट्टी लेकर उन्हें अपने घर जाना पड़ता था। अध्यापन में भी उन्हें अब बहुत कठिनाई होने लगी थी, अत: स्कूल के अधिकारियों ने उनका कार्य-भार काफ़ी कम कर दिया था। बीच-बीच में कुछ समय के लिए तो उन्हें अध्यापन-कार्य बिल्कुल छोड़ देना पड़ा, किंतु फिर भी वे 1851 तक पैरिस के अंधविद्यालय में शिक्षक के पद पर बने रहे। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन इसी विद्यालय की सेवा में समर्पित कर दिया

था, अत: यह जानते हुए भी कि वे पढ़ाने में असमर्थ हैं, विद्यालय के अधिकारियों ने उन्हें नौकरी से नहीं हटाया।

1851 में 14 या 15 दिसम्बर की रात को लुई ब्रेल बीमार हो गए। उस समय पैरिस में कड़ी ठंड पड़ रही थी जिसका उनके दुर्बल शरीर पर बहुत हानिकारक प्रभाव पड़ा। उन्हें बहुत अधिक खांसी आई और ख़ून की उल्टी भी हुई जिस से उनको ऐसा लगा कि उनकी मृत्यु अब निकट है। परंतु अगले दिन वे कुछ ठीक हो गए और इससे उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उसके बाद उनका स्वास्थ्य फिर खराब होने लगा। वे कई दिनों तक बिस्तर पर पड़े रहे और उनका स्वास्थ्य निरंतर बिगड़ता ही गया। 1851 का क्रिस्मस - जो उनके जीवन का अंतिम क्रिस्मस था - उन्होंने रुग्णावस्था में बिस्तर पर ही मनाया। वे अच्छी तरह जान गए थे कि अब वे अधिक दिनों तक इस संसार में नहीं रहेंगे। जब लुई ब्रेल के कुछ मित्रों ने उन्हें आश्वासन दिया कि वे शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएंगे तो उन्होंने बड़ी गंभीरता से कहा, ''आप अच्छी तरह जानते हैं कि मैं अपने आपको धोखा देना पसंद नहीं करता। मुझसे कुछ भी छिपाने की आवश्यकता नहीं है। इस संसार में मेरे जीवन का उद्देश्य अब पूरा हो चुका है।'' फिर उन्होंने अपने सभी मित्रों और संबंधियों को बुलाने का अनुरोध किया। एक वकील को बुलाकर उन्होंने अपनी वसीयत लिखवाई जिसमें अपने परिवार के कुछ सदस्यों के अतिरिक्त अनेक निर्धन व्यक्तियों तथा दृष्टिहीनों के लिए कल्याण-कार्य करने वाली संस्थाओं को अपना बचाया हुआ धन प्रदान करने का आदेश दिया। बाल्यकाल से ही लुई धर्मपरायण व्यक्ति थे, अत: जीवन की इस अंतिम वेला में उन्होंने अत्यंत श्रद्धापूर्वक पादरियों से धर्मोपदेश सुना जिस से उनका हृदय अपार संतोष, शांति एवं आनंद से भर गया। जीवन तथा जगत् के प्रति उनका मोह अब लगभग टूट चुका था और उन्होंने शांतिपूर्वक संसार से विदा लेने के लिए अपने आपको तैयार कर लिया था!

लुई ब्रेल को असह्य पीड़ा और यंत्रणा देकर 1851 का वर्ष काल का ग्रास बन चुका था, किंतु उस महापुरुष के जीवन-दीप की ज्योति अब भी टिमटिमा रही थी। यह ज्योति पांच दिनों तक इसी तरह टिमटिमाती रही। फिर आया 6 जनवरी, 1852 का वह दिन जो इस संसार में लुई ब्रेल के जीवन का अंतिम दिन था! अब तक उनके बहुत-से संबंधी और मित्र उनके पास पहुंच चुके थे। सभी के मन में गहरा दु:ख और शोक छाया हुआ था! दोपहर के समय लुई ब्रेल को ऐसा लगा कि उनके जीवन का अंतिम क्षण बहुत निकट आ पहुँचा है! उन्होंने पादरियों से प्रार्थना की कि वे आवश्यक धार्मिक संस्कार आरंभ कर दें। कुछ समय तक ये धार्मिक संस्कार चलते रहे। इनके समाप्त होने पर लुई ब्रेल के भाई और अन्य संबंधी तथा मित्र अंतिम

बार उनसे मिलने गए। वे अपने भाई को गले लगाकर मिले किंतु बोल नहीं पाए!

तब तक चार बज चुके थे और लुई ब्रेल की हालत बहुत बिगड़ने लगी थी। वे अब बोलने में पूरी तरह असमर्थ हो चुके थे, किंतु उन्होंने अपने होंठ हिलाकर सभी मिलने वालों से ऐसी मूक भाषा में विदा ली जो तुरंत हृदय को स्पर्श करती थी! उनका कष्ट निरंतर बढ़ता जा रहा था और वे धीरे-धीरे मृत्यु के गहन अंधकार में डूबते जा रहे थे! अब वहां उपस्थित व्यक्तियों के लिए अपने मन पर संयम रखना बहुत कठिन हो गया और उनका गहरा दु:ख उनकी आंखों में आंसुओं के रूप में छलकने लगा। लगभग साढ़े तीन घंटे इसी तरह गहरे दु:ख में बीत गए।

अंत में शाम के साढ़े सात बजे सूर्यास्त के साथ-साथ लुई ब्रेल ने भी इस संसार से महाप्रयाण किया और इस प्रकार वह जीवन-दीप सदा के लिए बुझ गया जिसने दृष्टिहीनों को अज्ञान के अंधकार से निकाल कर उनका पथ ज्ञान की ज्योति से आलोकित किया था! परंतु मृत्यु महापुरुषों के शरीर को ही नष्ट कर सकती है, उस अमर ज्योति को नहीं जो वे अपने पीछे संसार में छोड़ जाते हैं। यह बात लुई ब्रेल के संबंध में भी उतनी ही सत्य है जितनी संसार के किसी अन्य महापुरुष के विषय में।

जब लुई ब्रेल की मृत्यु हुई तब उन्हें पैरिस के बाहर कोई नहीं जानता था। उस समय उनका महत्त्व उतना ही नगण्य था जितना एक साधारण दृष्टिहीन व्यक्ति का हो सकता था। इसी कारण उनके निधन का दु:खद समाचार पैरिस के किसी समाचार-पत्र में नहीं छपा। इतना ही नहीं, उनकी ब्रेल लिपि को तब तक उनके अपने देश में भी औपचारिक मान्यता नहीं मिली थी। उनकी मृत्यु के दो वर्ष बाद 1854 में ही इस लिपि को औपचारिक मान्यता प्राप्त हुई जब फ्रांस की सरकार ने इसे दृष्टिहीनों की शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार लुई ब्रेल अपने क्रांतिकारी आविष्कार के लिए उस सम्मान से भी वंचित ही रह गए जिसके वे पूरी तरह अधिकारी थे। अन्य बहुत-से कष्टों की भांति उनके अद्‌भुत आविष्कार की इस घोर उपेक्षा को भी उनके जीवन की एक त्रासदी ही कहा जा सकता है।

परंतु जब पैरिस के अंधविद्यालय के विद्यार्थियों को लुई ब्रेल की मृत्यु का समाचार सुनाया गया तो वे सब गहरे शोक में डूब गए! उन्हें लगा कि उन्होंने अपना सब से अच्छा मित्र और सुयोग्य शिक्षक खो दिया है! सभी विद्यार्थी लुई ब्रेल को अंतिम श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए उस कमरे में पहुँचे जहां उनका शव रखा था! बाद में वह कमरा सभी दृष्टिहीनों के लिए एक तीर्थ-स्थान बन गया। लुई ब्रेल के मित्र, पैरिस स्कूल के विद्यार्थी तथा शिक्षक अपने विद्यालय में ही उनका अंतिम संस्कार करना चाहते थे, किंतु उनकी मां और उनके परिवार के अन्य सदस्यों ने यह

स्वीकार नहीं किया। वे उनका शव अपने गांव 'कूरे' ले गए और वहीं 10 जनवरी, 1852 को उनके अन्य संबंधियों की कब्रों के पास ही उन्हें दफ़ना कर उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया। इस प्रकार केवल 43 वर्ष की अल्पायु में ही उस महापुरुष की जीवन-लीला समाप्त हो गई जो सदा बड़ी ईमानदारी से अपने समस्त कर्तव्यों की पूर्ति करता रहा और जिसने अपना संपूर्ण जीवन ग़रीबों तथा दीन-दुखियों के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया था।

मृत्यु के पश्चात् अन्य महापुरुषों की भांति संसार में लुई ब्रेल की ख्याति भी बढ़ने लगी। शीघ्र ही फ्रांस तथा अन्य बहुत-से देशों में उनके प्रति श्रद्धांजलि का वह अनवरत क्रम आरंभ हुआ जो किसी-न-किसी रूप में आज भी जारी है। मई 1853 में पैरिस के अंधविद्यालय के द्वार पर उनकी एक मूर्ति स्थापित की गई जिसका निर्माण इस विद्यालय के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों द्वारा दिए धन से ही किया गया था। फिर 1882 में चंदे द्वारा एकत्रित धनराशि से 'कूरे' में लुई ब्रेल का एक भव्य स्मारक बनाया गया जिस पर ये शब्द अंकित हैं: ''दृष्टिहीनों की कृतज्ञता के प्रतीक के रूप में ब्रेल को समर्पित।'' यहां स्थापित लुई ब्रेल की पत्थर की मूर्ति उन्हें शिक्षक के रूप में प्रस्तुत करती है। इसमें उन्हें एक दृष्टिहीन छात्र को ब्रेल लिपि सिखाते हुए चित्रित किया गया है।

1909 में पैरिस के अंधविद्यालय ने बड़ी धूमधाम से लुई ब्रेल की जन्म-शताब्दी मनाई। जनवरी 1948 में फ्रांस के डाक-विभाग ने एक विशेष टिकट जारी किया जिस पर लुई ब्रेल का चित्र अंकित था। उनकी मृत्यु के ठीक सौ वर्ष बाद 1952 में फ्रांस की सरकार के आदेशानुसार उनके अवशेषों को 'कूरे' की कब्र से हटा कर पैरिस में उस विशिष्ट स्थान, 'पैंथिऑन' ('Pantheon') में लाया गया जहां केवल प्रतिष्ठित एवं महान फ्रांसीसी व्यक्तियों की कब्रें हैं। फ्रांस के किसी नागरिक के लिए यह सर्वोच्च सम्मान है जो एक ऐसे दृष्टिहीन व्यक्ति को प्रदान किया गया जिसे अपना सारा जीवन कठिनाइयों तथा विपत्तियों से संघर्ष करते हुए बिताना पड़ा और जो इतने बड़े सम्मान की कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था।

जब लुई ब्रेल के शरीर के अवशेष उनके गांव की कब्र से निकालकर पैरिस के सम्मानित स्थान, 'पैंथिऑन' में दफ़नाने के लिए ले जाए जा रहे थे, तब उस गांव के निवासियों ने अनुरोध किया कि वहां उनके इस महापुरुष के कुछ अवशेष अवश्य रखे जाने चाहिए। उनके इस अनुरोध को स्वीकार करते हुए लुई ब्रेल के हाथों की अस्थियां संगमरमर के एक कलश में रखकर वहां रहने दी गईं और उस कलश को उनकी कब्र पर ससम्मान स्थापित कर दिया गया जो आज भी वहां विद्यमान है। इस तरह उनके शरीर के वे महत्त्वपूर्ण अंग - अर्थात, दोनों हाथ जिनके द्वारा उन्होंने ब्रेल लिपि का क्रांतिकारी आविष्कार करके दृष्टिहीनों के अंधकारमय पथ को ज्ञान की ज्योति से आलोकित किया था - उनके गांव की कब्र पर सम्मानपूर्वक स्थापित हैं।

20 जून, 1952 को - जब फ्रांस के कुछ सरकारी अधिकारी लुई ब्रेल के अवशेष उनके गांव की कब्र से हटाकर पैरिस के 'पैंथिऑन' में दफ़नाने के लिए ले जा रहे थे - तब बहुत-से प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ-साथ हज़ारों दृष्टिहीन व्यक्ति भी उनके पीछे-पीछे चल रहे थे जिनमें विश्व-विख्यात दृष्टिहीन तथा बधिर महिला, 'हेलेन केलर' ('Helen Keller') भी सम्मिलित थीं। अमेरिका के एक समाचार-पत्र, 'दि न्यूयॉर्क टाइम्स' (22 जून, 1952) के अनुसार उस विशेष अवसर पर उन्होंने यह विचार व्यक्त किया था कि हम सब दृष्टिहीन लुई ब्रेल के प्रति उसी प्रकार ऋणी हैं जिस प्रकार मानव-जाति गुटेनबर्ग के प्रति ऋणी है। उनके इस कथन का तात्पर्य यह था कि जिस प्रकार जोहानेस गुटेनबर्ग (Johannes Gutenberg) ने मुद्रण-यंत्र (Printing Press) का आविष्कार करके मानव-जाति को असीम मुद्रित सामग्री पढ़ने-लिखने में समर्थ बनाया था, उसी प्रकार लुई ब्रेल ने भी ब्रेल लिपि का आविष्कार करके हम सभी दृष्टिहीनों को सब कुछ पढ़ने-लिखने की अभूतपूर्व क्षमता प्रदान की है, अत: उनके प्रति हमारी गहन हार्दिक कृतज्ञता स्वाभाविक ही है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि लुई ब्रेल का यश और सम्मान केवल उनके देश, फ्रांस तक ही सीमित नहीं है। आज संसार के सभी शिक्षित दृष्टिहीन उनके नाम से परिचित हैं और उन्हें ज्ञान एवं प्रकाश का प्रतीक मानकर उनका अत्यधिक आदर करते हैं। इस समय विश्व के किसी भी देश में दृष्टिहीनों के शिक्षण तथा कल्याण-कार्य से संबंधित ऐसी कोई संस्था नहीं है जो उनके नाम और आविष्कार, ब्रेल लिपि से अनभिज्ञ हो।

वस्तुत: जब तक संसार में स्वयं पढ़-लिख सकने वाला एक भी दृष्टिहीन व्यक्ति रहेगा और जब तक दृष्टिहीनों के मन में शिक्षा प्राप्त करने तथा स्वयं पढ़ने-लिखने की इच्छा बनी रहेगी, तब तक लुई ब्रेल का नाम भी अज्ञान के अंधकार को नष्ट करने वाले प्रकाश-स्तंभ के रूप में अमर रहेगा।

•

भाग दो

ब्रेल लिपि का आविष्कार और प्रसार

अध्याय-9

मूल समस्या

लुई ब्रेल ने अपनी ब्रेल लिपि का आविष्कार क्यों और कैसे किया, यह जानने से पूर्व इस बात को समझ लेना आवश्यक है कि उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वाध तक दृष्टिहीनों की शिक्षा की स्थिति क्या थी। वस्तुत: किसी भी प्रकार की सार्थक शिक्षा के लिए तीन तत्त्व अनिवार्य माने जाते हैं - पढ़ना, लिखना तथा गणित। जब कोई व्यक्ति किसी लिपि के माध्यम से भली-भांति कुछ पढ़ सकता है, लिख सकता है और सही ढंग से गणना कर सकता है, तभी उसे वास्तविक अर्थ में शिक्षित व्यक्ति माना जाता है। यदि वह इन तीनों तत्त्वों में से किसी एक तत्त्व से भी अनभिज्ञ है तो उसकी शिक्षा अर्पूण ही समझी जाती है। ऐसी स्थिति में हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि शिक्षा के लिए उपर्युक्त तीनों तत्त्व समान रूप से महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य हैं।

वैसे तो उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों तक साधारण दृष्टिहीन व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर ही नहीं पाते थे, किंतु जिन थोड़े-से भाग्यशाली दृष्टिहीनों को शिक्षा पाने का अवसर मिल जाता था, वे भी केवल मौखिक रूप से ही संगीत तथा कुछ अन्य आवश्यक बातें सीख कर संतोष कर लेते थे। वस्तुत: दृष्टिहीन व्यक्तियों की मूल समस्या यह थी कि देखने की क्षमता से वंचित होने के कारण वे सामान्य लिपि के माध्यम से न तो कुछ पढ़ सकते थे और न ही लिख सकते थे, अत: पुस्तकें तथा अन्य सभी प्रकार की मुद्रित सामग्री उनके लिए निरर्थक थी। इसी जटिल समस्या का समाधान करने के लिए अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दियों में कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा अनेक प्रयास किए गए। इन सब प्रयासों का मूल सिद्धान्त यही था कि दृष्टिहीनों को स्पर्श द्वारा सामान्य अक्षरों का ज्ञान कराया जाए और फिर जब वे इन अक्षरों को अच्छी तरह पहचानने लगें तो मोटे कागज़ों पर ये अक्षर उभारकर उनके लिए पुस्तकें तैयार की जाएं। इस प्रकार उभरे हुए अक्षरों की इसी लिपि को 'स्पर्श

लिपि' कहा जाता था।

परंतु यहां यह उल्लेखनीय है कि ऐसी स्पर्श लिपि तैयार करने से पूर्व भी दृष्टिहीनों को सामान्य अक्षरों की आकृति का कुछ ज्ञान कराने के लिए लकड़ी, टीन, मोम तथा डोरी के प्रयोग द्वारा ये अक्षर बनाने के प्रयास भी किए गए थे। यह समझना कठिन नहीं है कि ऐसे प्रयासों से बनाए गए अक्षरों को वास्तविक अर्थ में 'लिपि' की संज्ञा नहीं दी जा सकती, क्योंकि इनके माध्यम से साधारण दृष्टिहीन व्यक्तियों के लिए पढ़ना-लिखना संभव नहीं था। इन समस्त प्रयासों में कागज़ का उपयोग नहीं किया गया था, अत: इनके द्वारा दृष्टिहीनों के लिए पुस्तकें तैयार करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। इसके अतिरिक्त इन प्रयासों द्वारा निर्मित तथाकथित लिपियां पढ़ने-लिखने की दृष्टि से नितांत अव्यावहारिक थीं जिनका प्रयोग दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए नहीं किया जा सकता था।

जैसा कि हम प्रथम अध्याय में बता चुके हैं, सब से पहले वालोंतं ओए ने ही 1784 में एक ऐसी स्पर्श लिपि तैयार की थी जिसका प्रयोग उन्होंने अपने अंधविद्यालय में प्रारंभ किया था। इस स्पर्श लिपि का निर्माण सामान्य रोमन अक्षरों को एक विशेष प्रेस द्वारा मोटे कागज़ों पर उभारकर किया गया था। आवश्यकतानुसार इन सामान्य अक्षरों का आकार छोटा या बड़ा किया जा सकता था। ये अक्षर कागज़ की एक ओर उभारे जाते थे और दृष्टिहीन बच्चों को इन्हें छूकर पढ़ने का विशेष प्रशिक्षण दिया जाता था। इतना ही नहीं, कुछ प्रतिभाशाली दृष्टिहीन बच्चे प्रेस के माध्यम से इन अक्षरों को लिखना भी सीख लेते थे जिनमें लुई ब्रेल भी एक थे। इन सामान्य दृष्टिगत अक्षरों से निर्मित इस स्पर्श लिपि को 'लाइन टाइप' की संज्ञा भी दी जाती है, क्योंकि इसका निर्माण विभिन्न प्रकार की रेखाओं से किया जाता है।

ओए ने अपने विद्यालय के दृष्टिहीन बच्चों के लिए इस विशेष स्पर्श लिपि, 'लाइन टाइप' में बहुत-सी पुस्तकें तैयार करवाई थीं। धीरे-धीरे अगले कुछ दशकों में इन पुस्तकों की संख्या इतनी हो गई थी कि उन्होंने अपने विद्यालय में ही इन विशेष पुस्तकों के लिए छोटा-सा पुस्तकालय बना लिया था। लुई ब्रेल सहित इस विद्यालय के सभी बच्चे इन पुस्तकों के माध्यम से थोड़ी-सी शिक्षा प्राप्त करते थे। 1854 में पैरिस के अंधविद्यालय द्वारा औपचारिक रूप से ब्रेल लिपि को मान्यता दिए जाने से पूर्व ओए की इसी विशेष स्पर्श लिपि में तैयार की गई पुस्तकों के माध्यम से बच्चों को शिक्षा दी जाती थी।

ओए के अतिरिक्त जेम्स गॉल (James Gall), डॉ. ऐडमन्ड फ्राइ(Dr. Edmund Fry), जॉन ऐल्स्टन (John Alston), डॉ. सेम्यूल होव (Dr. Samuel Howe), विलियन मून (William Moon) आदि अनेक व्यक्तियों ने यूरोप के कुछ देशों तथा अमेरिका में दृष्टिहीनों को शिक्षा देने के लिए अपने-अपने ढंग से अलग-अलग स्पर्श लिपियों का निर्माण किया जो वालोंतं ओए की स्पर्श लिपि से बहुत भिन्न नहीं थीं। इन सभी स्पर्श लिपियों का मूल सिद्धांत यही था कि सामान्य दृष्टिगत अक्षरों अथवा उन से मिलते-जुलते अक्षरों को मोटे कागज़ों पर उभारकर स्पर्श योग्य बनाया जाए ताकि दृष्टिहीन व्यक्ति उन्हें छूकर पढ़ सकें। अठारहवीं शताब्दी में लुई से पूर्व तथा उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रेल लिपि के आविष्कार के बाद भी दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए इन स्पर्श लिपियों का प्रयोग किया जाता रहा।

उपर्युक्त लिपियों का निर्माण करने वाले सभी व्यक्ति यह मानते थे कि दृष्टिहीनों को ऐसी लिपि द्वारा ही शिक्षा दी जानी चाहिए जो दृष्टिगत लिपि के समान हो और जिसे दृष्टिवान व्यक्ति भी बिना किसी विशेष प्रशिक्षण के सरलतापूर्वक पढ़ सकें। उन दिनों यह विचार इतना प्रबल था कि दृष्टिहीनों की शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाला कोई भी दृष्टिवान व्यक्ति इसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता था। इसका मूल कारण यही था कि ये दृष्टिवान व्यक्ति दृष्टिगत लिपि से बिल्कुल भिन्न किसी अन्य लिपि के विषय में सोच ही नहीं पाते थे। इसके अतिरिक्त वे कभी भी यह जानने का कष्ट नहीं करते थे कि उनकी इन लिपियों के संबंध में स्वयं दृष्टिहीनों का क्या मत है। वस्तुतः ब्रेल लिपि के आविष्कार के पश्चात् उसे विश्वव्यापी मान्यता मिलने में जो लंबा समय लगा उसका प्रमुख कारण यही था कि स्पर्श लिपियों के निर्माता दृष्टिवान व्यक्ति दृष्टिगत लिपि से पूर्णतः अन्य लिपि को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। परंतु अंततः काफ़ी लंबे सघर्ष के बाद दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों को स्वीकार करना पड़ा कि स्वयं एक दृष्टिहीन व्यक्ति, लुई ब्रेल द्वारा निर्मित ब्रेल लिपि ही उनकी शिक्षा का एकमात्र प्रभावी माध्यम हो सकती है।

यहां यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि वे कौन-सी समस्याएं तथा कठिनाइयां थीं जिनके कारण अन्य सभी स्पर्श लिपियों को छोड़कर केवल ब्रेल लिपि को ही दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए अपनाना आवश्यक हो गया था। यह ठीक है कि इन सब स्पर्श लिपियों ने दृष्टिहीन व्यक्तियों के लिए कुछ सीमा तक पढ़ना संभव बनाया था, अतः इनके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परंतु इनके माध्यम से पुस्तकें पढ़ने में दृष्टिहीन बच्चों को अत्यधिक कठिनाई होती थी। इस संबंध में पहली समस्या तो यह थी कि सभी स्पर्श लिपियां मुख्यतः दृष्टि पर ही आधारित थीं; इसी कारण दृष्टिहीनों को इन्हें सीखने में बहुत अधिक समय लग जाता था। दृष्टिहीन बच्चे विभिन्न आकृतियों के जटिल दृष्टिगत अक्षरों को स्पर्श द्वारा बड़ी कठिनाई से ही पहचानना सीख पाते थे। फिर इन्हें पहचानना सीख लेने के बाद भी

इनके द्वारा कुछ पढ़ना उनके लिए बहुत कठिन होता था, क्योंकि एक-एक अक्षर को पहचानकर पढ़ने में बहुत अधिक समय लगता था।

उपर्युक्त कठिनाइयों के अतिरिक्त मोटे कागज़ो पर किसी भी स्पर्श लिपि में तैयार की गई साधारण पुस्तक भी इतनी भारी होती थी कि बच्चों के लिए उसे हाथ में लेना अथवा किसी अन्य उपाय से संभालना अत्यधिक कष्टदायक होता था। कहा जाता है कि सामान्यत: ऐसी पुस्तक लगभग साढ़े चार किलोग्राम की होती थी जिसे बच्चे उठा भी नहीं पाते थे। इन सब समस्याओं के साथ-साथ दृष्टिगत स्पर्श लिपियों की एक बहुत बड़ी कठिनाई यह भी थी कि इनका प्रयोग करते हुए हाथ से लिखना अत्यंत कठिन था; लिखने के लिए प्राय: एक विशेष प्रेस का ही प्रयोग करना पड़ता था। ऐसी स्थिति में सामान्य दृष्टिहीन बच्चे लिखना नहीं सीख पाते थे।

उपर्युक्त सभी कठिनाइयों तथा समस्याओं के कारण ही लुई ब्रेल ने दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए ब्रेल लिपि का आविष्कार किया था जो स्पर्श लिपि होते हुए भी अन्य सभी स्पर्श लिपियों से मूलत: भिन्न है। उन्हें इस लिपि के आविष्कार की प्रेरणा कहां से मिली और उन्होंने इसका निर्माण कैसे किया - इन प्रश्नों का उत्तर यथास्थान अगले अध्यायों में दिया जाएगा।

●

अध्याय-10

ब्रेल लिपि की रचना

पिछले अध्याय में हम कुछ ऐसी समस्याओं की संक्षिप्त चर्चा कर चुके हैं जिनके कारण लुई ब्रेल के समय में प्रचलित दृष्टिगत स्पर्श लिपियां दृष्टिहीनों की शिक्षा-संबंधी समस्याओं का समाधान करने में असमर्थ रही थीं। लुई ब्रेल ने स्वयं व्यक्तिगत रूप से इन समस्याओं का अनुभव किया था। उन्होंने देखा था कि ये स्पर्श लिपियां वास्तव में दृष्टिहीन व्यक्तियों को पुस्तकें उपलब्ध नहीं करा सकतीं जो उनकी सब से बड़ी आवश्यकता है। इसी कारण वे स्वयं अपने तथा अन्य सभी दृष्टिहीनों के जीवन में बड़ी तीव्रता से पुस्तकों के अभाव का अनुभव करते रहे थे।

पैरिस के अंधविद्यालय में दाखिल होने के बाद जब लुई ब्रेल पहली बार अपने घर आए तब उन्होंने अपने पिता से कहा था कि दृष्टिहीन व्यक्ति संसार में सब से अधिक अकेलेपन का अनुभव करते हैं, क्योंकि उनके पास पुस्तकें नहीं होतीं और वे स्वयं कुछ पढ़-लिख नहीं सकते। अपनी इसी धारणा के कारण वे सदा दृष्टिहीनों की उपर्युक्त समस्या के समाधान के विषय में निरंतर सोचते रहते थे। इसके अतिरिक्त बाल्यावस्था से ही उनके मन में अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त करने की अदम्य इच्छा थी, किंतु वे यह सोचकर बहुत उदास हो जाते थे कि पुस्तकों के बिना उनका ज्ञान सदा सीमित ही रहेगा। लुई ब्रेल अच्छी तरह जानते थे कि अन्य दृष्टिहीनों की भी यही स्थिति है, वे इस समस्या को केवल अपनी व्यक्तिगत समस्या ही नहीं, अपितु सभी दृष्टिहीन व्यक्तियों की समस्या मानकर इस पर व्यापक दृष्टि से विचार करते थे। धीरे-धीरे उन्होंने समझ लिया था कि दृष्टिहीनों के लिए एक नई लिपि के आविष्कार के बिना इस गंभीर समस्या का समुचित समाधान नहीं हो सकता; इसी कारण ऐसी लिपि की रचना करके उनकी सहायता करना उन्होंने अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य (Mission) बना लिया था। पैरिस के अंधविद्यालय में प्रवेश करने के

लगभग दो वर्ष बाद 1821 से ही उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास आरंभ कर दिया था।

यहां यह उल्लेखनीय है कि लुई ब्रेल को दृष्टिहीनों के लिए अपनी नई 'ब्रेल लिपि' के आविष्कार की मूल प्रेरणा 'श्री चार्ल्स बारबिये' ('Charles Barbier') से मिली थी, अत: यहां उनका संक्षिप्त परिचय दे देना अप्रासंगिक नहीं होगा। उनका जन्म लुई ब्रेल से लगभग 42 वर्ष पूर्व 18 मई, 1767 को फ्रांस के एक नगर में हुआ था। उनके पिता एक बड़े राज्याधिकारी थे। श्री बारबिये बहुत ही कुशाग्रबुद्धि तथा अध्ययनशील व्यक्ति थे और उनमें नए आविष्कार करने की विशेष प्रतिभा थी। सैनिक शिक्षा प्राप्त करके वे नेपोलियन की सेना में भर्ती हो गए और धीरे-धीरे पदोन्नति करते हुए कैप्टन बन गए। 1809 में - जिस वर्ष लुई ब्रेल का जन्म हुआ था - बारबिये ने एक ऐसी पद्धति का आविष्कार किया जिसकी सहायता से सैनिक रात्रि के अंधकार में भी अपने अधिकारियों के आदेशों को पढ़ सकते थे और इस प्रकार शत्रु को उनकी उपस्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता था। मोटे कागज़ पर कुछ रेखाओं तथा बिंदुओं को व्यवस्थित ढंग से उभारा जाता था जिन्हें छूकर प्रकाश की सहायता के बिना ही सैनिक रात को संदेश पढ़ सकते थे। इसी कारण श्री बारबिये ने इस पद्धति को 'रात्रि-लेखन' ('Night Writing') की संज्ञा दी थी। स्पष्ट है कि उन्होंने इस रात्रि-लेखन का आविष्कार सैनिकों के लिए ही किया था, दृष्टिहीनों के लिए नहीं। 1819 तक दृष्टिहीनों के लिए इस लेखन-पद्धति के उपयोगी सिद्ध होने का विचार उनके मन में नहीं आया था। परंतु उसी वर्ष एक प्रदर्शनी में श्री बारबिये ने देखा कि श्री वालोंतं ओए की विधि के अनुसार सामान्य अक्षरों में छपी पुस्तकों को पढ़ने में दृष्टिहीनों को बड़ी कठिनाई होती है। इस विधि से अपनी रात्रि-लेखन संबंधी पद्धति की तुलना करके वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि दृष्टिहीनों के लिए उनकी पद्धति अधिक सरल तथा उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

फिर दृष्टिहीनों के साथ कुछ परीक्षण करने के पश्चात् 1821 में श्री बारबिये ने पैरिस के स्कूल में अपनी रात्रि-लेखन की पद्धति का प्रदर्शन किया। उस समय जिन विद्यार्थियों को यह पद्धति दिखाई गई उनमें लुई ब्रेल भी सम्मिलित थे। जब दृष्टिहीन विद्यार्थियों को इस पद्धति द्वारा पढ़ना सिखाया गया तो यह प्रमाणित हुआ कि श्री ओए की विधि की अपेक्षा श्री बारबिये की रात्रि-लेखन पद्धति कहीं अधिक सरल और उपयोगी है।

इस प्रकार सब से पहले श्री बारबिये ने यह सिद्ध किया कि दृष्टिहीनों के लिए सामान्य दृष्टिगत लिपि के अक्षरों की नहीं, प्रत्युत ऐसे उभरे हुए बिंदुओं (Dots) की आवश्यकता है जिन्हें अंगुलियों द्वारा छूकर सरलतापूर्वक भली-भांति पहचाना जा सके। उनका यह विचार उस युग में एक ऐसा क्रांतिकारी विचार था

जिसका समर्थन बहुत कम व्यक्ति करते थे। इतना ही नहीं, बारबिये ने ही सर्वप्रथम उस स्लेट और स्टाइलस का भी आविष्कार किया था जिसके द्वारा मोटे कागज़ पर बिंदुओं को उभारा जा सकता था। आज दृष्टिहीन व्यक्ति जिस ब्रेल स्लेट का प्रयोग करते हैं वह बारबिये की स्लेट से बहुत भिन्न नहीं है। आगे चलकर मूलत: बारबिये के उपर्युक्त सिद्धांत के आधार पर लुई ब्रेल ने उस लिपि की रचना की जो इस समय 'ब्रेल लिपि' के नाम से विख्यात है। आज बहुत कम दृष्टिहीन व्यक्ति श्री चार्ल्स बारबिये के नाम से परिचित हैं, किंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ब्रेल लिपि के आविष्कार में उन्होंने बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान किया था जिसके लिए स्वयं लुई ब्रेल ने अपने पत्रों तथा अपनी पुस्तकों में उनके प्रति बार-बार अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की थी।

1821 में श्री बारबिये की पद्धति के प्रदर्शन के पश्चात् पैरिस के अंधविद्यालय के विद्यार्थियों में काफ़ी समय तक इसके गुण-दोषों पर तीव्र वाद-विवाद तथा विचार-विमर्श होता रहा। इस विचार-विमर्श में लुई ब्रेल ने विशेष रुचि ली और श्री बारबिये की पद्धति की सभी सूक्ष्म विशेषताओं को भली-भांति समझा। इस पद्धति पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि दृष्टिहीनों की शैक्षणिक आवश्यकताओं के लिए यह अपर्याप्त और अनुपयुक्त है। इस पद्धति में वर्णमाला के अक्षरों के स्थान पर केवल ध्वनियों के अनुसार शब्द लिखे जाते थे। अत: विद्यार्थियों को प्रत्येक शब्द की वर्तनी (Spellings) का ज्ञान नहीं हो पाता था। इसके अतिरिक्त उक्त पद्धति में बिंदुओं की अधिकतम संख्या बारह थी और इतने अधिक बिंदुओं को एक साथ एक अंगुली के अग्रभाग से छूकर समझना बहुत कठिन होता था। विराम चिह्नों तथा संगीत एवं गणित संबंधी चिह्नों के लिए भी इसमें कोई व्यवस्था नहीं थी। इन सब त्रुटियों के कारण श्री बारबिये की यह रात्रि-लेखन पद्धति दृष्टिहीनों की शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में पूर्णत: असमर्थ थी।

लुई ब्रेल ने श्री बारबिये का ध्यान उनकी पद्धति की इन सब कमियों तथा त्रुटियों की ओर आकृष्ट किया और इन्हें दूर करने के लिए अपने कुछ सुझाव भी दिए। परंतु श्री बारबिये ने उन्हें एक बालक समझकर उनके इन सुझावों की उपेक्षा कर दी और अपने मत पर ही स्थिर रहे। इस प्रकार जब श्री बारबिये ने अपनी पद्धति में कोई परिवर्तन करने से इन्कार कर दिया तो लुई ब्रेल ने स्वयं एक नई लिपि का आविष्कार करने का निश्चय किया।

स्वयं दृष्टिहीन होने के कारण लुई ब्रेल अच्छी तरह जानते थे कि पुस्तकों का अभाव दृष्टिहीनों की कितनी बड़ी समस्या है और इसके फलस्वरूप उनका ज्ञान कितना सीमित रह जाता है। परंतु इस समस्या का समाधान ऐसी लिपि के बिना संभव नहीं था जिसमें वर्णमाला के सभी अक्षरों, विराम चिह्नों तथा संगीत एवं गणित

संबंधी चिह्नों की समुचित व्यवस्था हो और जिसके द्वारा सभी दृष्टिहीन व्यक्ति भली-भांति सरलतापूर्वक पढ़-लिख सकें। इसी कारण लुई ब्रेल ने अपना अधिक-से-अधिक समय ऐसी लिपि के आविष्कार में लगाना आरंभ कर दिया। उन्होंने अपना यह महान कार्य संभवत: 1822 अथवा 1823 में प्रारंभ किया था। उस समय वे पैरिस के अंधविद्यालय में अध्ययन कर रहे थे और उनकी आयु केवल 13 या 14 वर्ष ही थी। फिर भी एक बार उक्त महान कार्य आरंभ कर देने के उपरांत वे अपना संपूर्ण अतिरिक्त समय इसकी पूर्ति में ही लगाने लगे। अध्ययन में व्यस्त रहने के कारण दिन में तो उन्हें पर्याप्त समय नहीं मिलता था, अत: रात को - जब उनके सभी साथी निंद्रा का आनंद ले रहे होते - तब वे अपने आराम और स्वास्थ्य की चिंता किए बिना मोटे कागज़ों पर विविध प्रकार के बिंदु बनाने में लगे रहते थे। फिर अगले दिन वे अपने मित्रों से इन बिंदुओं को पहचानने का अनुरोध करके अपनी लिपि की परीक्षा करते और उसमें जो त्रुटियां दिखाई देतीं उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते थे। वे इस कार्य में इतने अधिक मग्न हो गए कि सोते-जागते, खाते-पीते, प्रतिक्षण उन्हें इसी का ध्यान रहता था।

अनेक वर्षों तक लुई ब्रेल इसी प्रकार कठोर परिश्रम तथा निरंतर साधना करते रहे। अंत में उनकी यह महान साधना सफल हुई और उन्होंने दृष्टिहीनों के लिए एक नवीन लिपि का आविष्कार किया। लुई ब्रेल ने लगभग 16 वर्ष की आयु में ही 1825 में इस लिपि का आविष्कार कर लिया था। उनके सभी साथियों को यह नई लिपि इतनी अच्छी लगी कि वे इसे एक महान क्रांतिकारी आविष्कार मानने लगे। परंतु स्वयं लुई ब्रेल अपनी इस लिपि से अभी पूरी तरह संतुष्ट नहीं थे। इसी कारण वे लगभग चार वर्षों तक अपने मित्रों के साथ इसके गुण-दोषों के संबंध में लगातार परीक्षण तथा विचार-विनिमय करते रहे। जब उन्हें विश्वास हो गया कि इस लिपि द्वारा दृष्टिहीन व्यक्ति भली-भांति पढ़-लिख सकते हैं तब 1829 में उन्होंने एक छोटी-सी पुस्तिका में इसकी विस्तृत रूपरेखा प्रकाशित कराई। संसार में ब्रेल लिपि के संबंध में यह सब से पहली पुस्तिका थी।

उपर्युक्त पुस्तिका के प्रकाशन के बाद भी लगभग आठ वर्षों तक लुई ब्रेल अपने साथियों की सहायता से इस लिपि में आवश्यक संशोधन तथा सुधार करते रहे। इस लंबी अवधि में उन्होंने अपनी लिपि में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। इस प्रकार पर्याप्त संशोधन तथा सुधार करने के पश्चात् जब वे इस लिपि से पूर्णत: संतुष्ट हो गए तब 1837 में उन्होंने इसकी संशोधित रूपरेखा प्रस्तुत की जो उसी वर्ष प्रकाशित हुई। ब्रेल लिपि की इस संशोधित रूपरेखा में संपूर्ण वर्णमाला के अतिरिक्त सभी विराम चिह्नों, बहुत-से शब्दों के संकोचों एवं संक्षेपों (Contractions and Abbreviations), संगीत तथा गणित संबंधी चिह्नों की पूर्ण व्यवस्था की गई थी।

आज विश्व में फ्रैंच तथा इंग्लिश ब्रेल का जो स्वरूप प्रचलित है वह लुई ब्रेल की उक्त संशोधित रूपरेखा से बहुत भिन्न नहीं है। इस प्रकार लगभग 15 वर्षों तक निरंतर साधना तथा कठोर परिश्रम करने के पश्चात् लुई ब्रेल ने संसार के समक्ष एक ऐसी नई लिपि प्रस्तुत की जिसके द्वारा सभी दृष्टिहीन व्यक्ति बिना किसी कठिनाई के अच्छी तरह पढ़-लिख सकते हैं और जिसे उनका 'क्रांतिकारी आविष्कार' माना जाता है।

लुई ब्रेल द्वारा निर्मित यह ब्रेल लिपि बहुत ही सरल तथा वैज्ञानिक है। यदि आप इस पुस्तक के अंत में दिए गए परिशिष्ट में प्रस्तुत 'इंग्लिश ब्रेल वर्णमाला' को ध्यानपूर्वक देखें तो आपके लिए यह समझना कठिन नहीं होगा कि इसके सभी अक्षरों का निर्माण एक विशेष नियम के अनुसार किया गया है। इस संपूर्ण वर्णमाला का मूल आधार केवल छह बिंदु हैं जिनके विभिन्न संयोगों से त्रेसठ अक्षर बनाए गए हैं। इन छह बिंदुओं को तीन-तीन बिंदुओं की दो पंक्तियों में विभाजित किया गया है जिनमें से एक पंक्ति बाईं ओर तथा दूसरी दाईं ओर रखी गई है। बाईं ओर की पंक्ति के बिंदुओं की क्रम संख्या 1-2-3 तथा दाईं ओर की पंक्ति के बिंदुओं की क्रम संख्या 4-5-6 निश्चित की गई है। इन दोनों पंक्तियों के छह बिंदुओं को भिन्न-भिन्न क्रम में रखने से उनकी अलग-अलग आकृतियां बनती हैं। यही कारण है कि प्रत्येक अक्षर की आकृति दूसरे अक्षर की आकृति से भिन्न होती है। इन छह बिंदुओं पर आधारित अक्षरों को एक विशेष स्लेट और स्टाइलस द्वारा मोटे कागज़ पर उभारा जाता है जिसके फलस्वरूप उन्हें एक अंगुली के अग्रभाग से छूकर उनकी अलग-अलग आकृतियों को सरलतापूर्वक पहचाना जा सकता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक अक्षर को पहचानने के लिए उसकी विशेष आकृति का ही ध्यान रखा जाता है, उसमें प्रयुक्त बिंदुओं की संख्या का नहीं। इसका कारण यह है कि बहुत-से अक्षरों में बिंदुओं की संख्या समान होते हुए भी उनकी आकृतियां अलग-अलग होती हैं। इस प्रकार विभिन्न आकृतियों के परिणामस्वरूप निर्मित सभी अक्षरों को पहचानना बहुत सरल हो जाता है।

यहां इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि ब्रेल लिपि का मूल आधार एक 'ब्रेल सेल' ('Braille Cell') है जिसके छह बिंदुओं द्वारा विभिन्न अक्षर बनाए जाते हैं। इन सभी अक्षरों का निर्माण एक विशेष नियम के अनुसार किया गया है जिसे समझ लेने पर इंग्लिश ब्रेल को सरलतापूर्वक सीखा जा सकता है। इस पुस्तक के परिशिष्ट में दी गई 'इंग्लिश ब्रेल वर्णमाला' की प्रथम पंक्ति संपूर्ण वर्णमाला की आधारभूत पंक्ति है, क्योंकि इसी पंक्ति में एक अथवा दो बिंदु जोड़कर अधिकतर पंक्तियों का निर्माण किया गया है। इस प्रथम पंक्ति में अधिकतम चार बिंदु हैं जिनमें से दो बाईं ओर की पंक्ति से (बिंदु 1-2) और दो दाईं ओर की पंक्ति

से (बिंदु 4-5) लिए गए हैं। इस पंक्ति में अंग्रेजी के पहले दस अक्षर - 'ए' से 'जे' तक - सम्मिलित किए गए हैं। दूसरी पंक्ति के अक्षरों का निर्माण प्रथम पंक्ति के प्रत्येक अक्षर के साथ बाईं ओर के बिंदु 3 को जोड़कर किया गया है और इसमें अंग्रेजी के अगले दस अक्षर - 'के' से 'टी' तक - रखे गए हैं। तीसरी पंक्ति के अक्षर पहली पंक्ति के प्रत्येक अक्षर के साथ दो बिंदुओं - बिंदु 3 तथा बिंदु 6 - को जोड़कर बनाए गए हैं और इसमें अंग्रेजी के अक्षर, 'डब्ल्यू' को छोड़कर शेष पांच अक्षरों तथा कुछ अन्य चिह्नों को सम्मिलित किया गया है। चौथी पंक्ति के दस अक्षरों का निर्माण पहली पंक्ति के प्रत्येक अक्षर के साथ बिंदु 6 को जोड़कर किया गया है जिसमें ब्रेल के कुछ 'संकोच' ('Contractions') सम्मिलित हैं। पांचवीं पंक्ति में कुल दस विराम चिह्न सम्मिलित हैं और इसका निर्माण प्रथम पंक्ति के बिंदु 1 तथा 4 को छोड़कर चार बिंदुओं - 2-3-5-6 द्वारा किया गया है। छठी तथा सातवीं पंक्तियों में जो 13 अक्षर सम्मिलित हैं उनमें से अधिकतर ब्रेल लिपि के अपने विशिष्ट चिह्न हैं जो दृष्टिगत सामान्य अंग्रेजी वर्णमाला में नहीं पाए जाते। इस पुस्तक के परिशिष्ट-1 में दी गई 'फ्रैंच ब्रेल वर्णमाला' को ध्यानपूर्वक देखने से समस्त अक्षरों के निर्माण का उपर्युक्त नियम सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

संपूर्ण वर्णमाला की रचना करते समय लुई ब्रेल ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि सभी अक्षरों को अलग-अलग भली-भांति पहचाना जा सके ताकि पढ़ने में किसी प्रकार की कठिनाई न हो। इसी कारण उन्होंने पहली पंक्ति के अक्षरों से मिलते-जुलते अक्षरों को वर्णमाला में सम्मिलित न करके विराम चिह्नों के लिए निश्चित किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने वर्णमाला में ऐसा कोई अक्षर सम्मिलित नहीं किया जो किसी अन्य अक्षर से बहुत मिलता-जुलता था। वे अच्छी तरह समझते थे कि प्रत्येक अक्षर की भिन्न आकृति होने के कारण वर्णमाला को सीखना तथा पढ़ना बहुत सरल होगा।

परंतु यहां यह बता देना आवश्यक है कि वर्णमाला की इस सरलता में लुई ब्रेल को जो सफलता मिली उसका एक मुख्य कारण फ्रैंच तथा इंग्लिश वर्णमाला के अक्षरों की सीमित संख्या है। जिन भाषाओं की वर्णमाला के अक्षरों की संख्या बहुत अधिक है उनमें ब्रेल लिपि की यह सरलता नहीं लाई जा सकी। इस पुस्तक के परिशिष्ट-2 में दी गई 'भारती ब्रेल की हिंदी वर्णमाला' इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। परंतु इस से ब्रेल लिपि के व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक होने में कोई अंतर नहीं पड़ता। अपने मूल रूप में यह लिपि निश्चय ही बहुत सरल, सुविधाजनक और वैज्ञानिक है।

•

अध्याय-11

ब्रेल लिपि की मान्यता के लिए संघर्ष

ब्रेल लिपि का इतिहास इस बात का साक्षी है कि लुई ब्रेल को अपनी इस लिपि के आविष्कार की अपेक्षा इसे मान्यता दिलाने के लिए कहीं अधिक प्रयत्न और संघर्ष करना पड़ा। इसका कारण यह था कि अपनी नई लिपि का आविष्कार करना तो स्वयं उन्हीं के हाथ में था, किंतु उसे मान्यता देना पूर्णतः अन्य व्यक्तियों पर निर्भर था और इनमें से बहुत कम लोग उनके समर्थक थे; अधिकतर व्यक्ति या तो उनके विरोधी थे अथवा उनके प्रति उदासीन। यही कारण है कि लुई ब्रेल के समक्ष जब अपनी ब्रेल लिपि के प्रयोग तथा उसे मान्यता दिलाने की समस्या उपस्थित हुई तो उन्हें बहुत बाधाओं का सामाना करना पड़ा। वस्तुतः किसी भी नए आविष्कार को मान्यता मिलने में प्रायः कठिनाई होती है और पर्याप्त समय भी लगता है, क्योंकि अधिकतर व्यक्ति अपनी परंपरागत धारणाओं को छोड़ने के लिए सरलतापूर्वक तैयार नहीं होते। अपनी नवीन ब्रेल लिपि को फ्रांस तथा अन्य देशों द्वारा स्वीकार कराने में लुई ब्रेल को भी बहुत कठिनाई हुई।

पैरिस के अंधविद्यालय में तो ब्रेल लिपि का अनौपचारिक प्रयोग इसके आविष्कार के कुछ समय बाद ही प्रारंभ हो गया था, क्योंकि इस विद्यालय के तत्कालीन निदेशक, डॉ. पिनिए इस लिपि को दृष्टिहीनों के लिए बहुत उपयोगी मानते थे। 1827 में - जब ब्रेल लिपि अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही थी - उन्होंने व्याकरण के कुछ भाग इसमें मुद्रित करवा दिए थे। इसके पश्चात् 1830 में उन्होंने अपने स्कूल की कक्षाओं में अनौपचारिक रूप से इस लिपि का प्रयोग करने की अनुमति दे दी थी। वस्तुतः विद्यार्थियों द्वारा ब्रेल लिपि का प्रयोग किए जाने के कारण ही इसमें कई वर्षों तक अनेक महत्त्वपूर्ण संशोधन तथा सुधार होते रहे। 1837 में

डॉ. पिनिए ने तीन खंडों में फ्रांस का संक्षिप्त इतिहास नामक पुस्तक को इस लिपि में मुद्रित करवाया। संसार में दृष्टिहीनों के लिए ब्रेल लिपि में मुद्रित यह पहली महत्त्वपूर्ण पुस्तक थी जिसके कारण बाद में डॉ. पिनिए को नौकरी से हटा दिया गया था। इस प्रकार 1827 से पैरिस के अंधविद्यालय में अनौपचारिक रूप से ब्रेल लिपि का प्रयोग आरंभ हुआ और डॉ. पिनिए के प्रोत्साहन के फलस्वरूप उसका महत्त्व निरंतर बढ़ता गया।

परंतु 1840 में यह स्थिति पूरी तरह बदल गई और लुई ब्रेल तथा उनकी नई लिपि को बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। बात यह थी कि डॉ. पिनिए के अधीन कार्य करने वाले पैरिस के अंधविद्यालय के उपनिदेशक, डॉ. पिएर-आरमां ड्यूफ़ो (Pierre-Armand Dufau) काफ़ी समय से उनके प्रति मन-ही-मन शत्रुता की भावना रखते थे। इसका कारण यह था कि वे 1815 से उक्त विद्यालय में कार्य कर रहे थे, किंतु 25 वर्षों के बाद भी उन्हें इसके निदेशक का पद प्राप्त नहीं हो सका था। वे जानते थे कि जब तक डॉ. पिनिए इसके निदेशक बने रहेंगे, तब तक उन्हें यह पद नहीं मिल सकता, अतः उन्होंने धर्म तथा राजनीति को अपने हथियार बनाकर उनके विरुद्ध षड़यंत्र करना आरंभ कर दिया।

1789 की क्रांति के पश्चात् फ्रांस की नई सरकार ईसाई धर्म तथा इसमें विश्वास करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध हो चुकी थी। डॉ. ड्यूफ़ो को मालूम था कि डॉ. पिनिए तथा लुई ब्रेल दोनों धर्म परायण व्यक्ति हैं और वे यह भी जानते थे कि डॉ. पिनिए ने फ्रांस का संक्षिप्त इतिहास नामक पुस्तक ब्रेल में मुद्रित करवाई है जो पादरियों ने लिखी थी। इन बातों से डॉ.ड्यूफ़ो ने फ्रांस के तत्कालीन शिक्षा-विभाग के अधिकारियों को विश्वास दिला दिया कि डॉ. पिनिए सरकारी नीति के विरुद्ध कार्य कर रहे हैं। इस से रुष्ट होकर इन अधिकारियों ने 1840 में उन्हें अंधविद्यालय के निदेशक के पद से हटा दिया और उनके स्थान पर डॉ. ड्यूफ़ो को निदेशक नियुक्त कर दिया। इस प्रकार वे अपने षडयंत्र में सफल हो गए और डॉ. पिनिए को अपना पद छोड़ना पड़ा।

निदेशक बनते ही डॉ. ड्यूफ़ो ने अंधविद्यालय में अपने नियम लागू करना आरंभ कर दिया। सब से पहले उन्होंने 1786 से प्रचलित वालोंतं ओए की विधि के स्थान पर 'बोस्टन लाइनटाइप' से मिलती-जुलती दृष्टिगत उभरी हुई स्पर्श लिपि में पुस्तकें तैयार करने का आदेश दिया जो उनके विचार में ओए की विधि की अपेक्षा दृष्टिहीनों के लिए अधिक सरल तथा सुविधाजनक थी। इतना ही नहीं, उन्होंने ओए की विधि द्वारा निर्मित उन सभी 73 पुस्तकों को जला देने का आदेश भी दे दिया जो उस समय अंधविद्यालय के पुस्तकालय में विद्यमान थीं और जिन्हें बहुत-सारा धन ख़र्च करके पिछले 56 वर्षों में परिश्रमपूर्वक तैयार किया गया था। फिर शीघ्र ही डॉ. ड्यूफ़ो ने अंधविद्यालय में ब्रेल लिपि के प्रयोग पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा दिया जिसका प्रयोग वहां 1827 से किया जा रहा था। डॉ. पिनिए के प्रति उनकी जो शत्रुता थी उसका घातक प्रभाव अब लुई ब्रेल और उनकी नई लिपि पर पड़ने लगा था। वे जानते थे कि लुई ब्रेल डॉ. पिनिए के प्रबल समर्थक हैं, अतः वे उन दोनों के प्रति समान रूप से शत्रुता की भावना रखते थे।

इस प्रकार अंधविद्यालय में अपनी लिपि को प्रतिबंधित कर दिए जाने के कारण लुई ब्रेल बहुत उदास तथा निराश हो गए थे। वस्तुतः डॉ. ड्यूफ़ो ने एक विशेष यंत्र का आविष्कार किया था जो उनके विचार में दृष्टिहीनों के लिए सामान्य स्पर्श लिपि द्वारा लिखने में सहायक सिद्ध हो सकता था। ऐसी स्थिति में यदि ब्रेल लिपि का प्रयोग अंधविद्यालय में जारी रहता तो उनका वह यंत्र बेकार हो जाता। इसके अतिरिक्त उस समय अन्य बहुत-से व्यक्तियों की भांति डॉ. ड्यूफ़ो भी यह मानते थे कि दृष्टिहीनों को केवल उसी सामान्य लिपि द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए जिसका प्रयोग दृष्टिवान व्यक्ति करते हैं, क्योंकि बिल्कुल भिन्न लिपि का प्रयोग करने के फलस्वरूप वे समाज से अलग-थलग पड़ जाएंगे। इस तरह पैरिस के अंधविद्यालय में गत तेरह वर्षों से प्रयुक्त ब्रेल लिपि को प्रतिबंधित कर दिए जाने के कारण केवल लुई ब्रेल ही नहीं, अपितु सभी विद्यार्थी तथा शिक्षक भी बहुत निराश हुए।

परंतु सौभाग्यवश इस दुःखद स्थिति में शीघ्र ही परिवर्तन आरंभ हो गया। इसका कारण यह था कि सभी विद्यार्थी कई वर्षों से ब्रेल लिपि का प्रयोग कर रहे थे और वे अपने व्यक्तिगत अनुभव से जानते थे कि यह लिपि अन्य सभी स्पर्श लिपियों की अपेक्षा कहीं अधिक सरल तथा सुविधाजनक है। इस पर प्रतिबंध लगने के बाद जब उन्हें एक बार फिर से दृष्टिगत स्पर्श लिपि द्वारा शिक्षा दी जाने लगी तो उन्हें ब्रेल लिपि का महत्त्व और भी अधिक अनुभव होने लगा। ऐसी स्थिति में वे इस पर प्रतिबंध के बावजूद इसे छोड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने गुप्त रूप से इसका प्रयोग करना जारी रखा और ऐसे निदेशक के आदेश को स्वीकार नहीं किया जिसके प्रति उनके मन में स्नेह तथा आदर नहीं था। वे एक-दूसरे को ब्रेल लिपि सिखाते रहते थे और अपने शिक्षक, लुई ब्रेल से भी अनुरोध करते थे कि वे उन्हें स्कूल की छुट्टी के बाद गुप्त रूप से यह लिपि सिखा दिया करें। यद्यपि अनुशासनप्रिय तथा ईमानदार शिक्षक होने के कारण लुई ब्रेल विद्यालय के नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहते थे, फिर भी केवल विद्यार्थियों के हित को ध्यान में रखते हुए स्कूल के समय के बाद वे उन्हें अपनी यह लिपि सिखा दिया करते थे। इस तरह प्रतिबंधित होते हुए भी ब्रेल लिपि का प्रयोग विद्यार्थियों द्वारा निरंतर किया जाता रहा जिसके लिए उन्हें कभी-कभी दंड भी दिया जाता था।

ब्रेल लिपि में विद्यार्थियों की इतनी अधिक रुचि को देखकर विद्यालय के

उपनिदेशक, डॉ. ज़ोज़ेफ ग्वादे (Joseph Guadet) भी इसकी उपयोगिता को समझने लगे और धीरे-धीरे इसके प्रबल समर्थक हो गए। इसी कारण उन्होंने डॉ. ड्यूफ़ो से अनुरोध किया कि वे स्कूल में इसके प्रयोग की अनुमति दे दें। वे डॉ. ड्यूफ़ो के मित्र थे और उन्हीं की सहायता से अंधविद्यालय के उपनिदेशक नियुक्त हुए थे। दृष्टिहीनों की शिक्षा के विषय में लगभग अनभिज्ञ होने के बावजूद वे बहुत विद्वान तथ खुले दिमाग के व्यक्ति थे और इसी लिए डॉ. ड्यूफ़ो ने उन्हें विद्यायल के शिक्षा-विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया था। डॉ. ग्वादे विद्यार्थियों को ब्रेल लिपि द्वारा सरलता और शीघ्रता से पढ़ते-लिखते देखकर इसे अन्य सभी स्पर्श लिपियों की तुलना में कहीं अधिक उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण मानने लगे थे। 22 फ़रवरी, 1844 को पैरिस के अंधविद्यालय के नए भवन का उद्घाटन हुआ था और इस अवसर पर भाषण देते हुए डॉ. ग्वादे ने ब्रेल लिपि की बहुत प्रशंसा की थी। उन्होंने कहा था कि श्री बारबिये की रात्रि-लेखन-विधि मे जो दोष थे उन्हें दूर करके लुई ब्रेल ने बहुत ही सरल तथा श्रेष्ठ लिपि का आविष्कार किया है। उन्होंने इस बात पर भी खेद प्रकट किया था कि लुई ब्रेल और उनकी महत्त्वपूर्ण लिपि की उपेक्षा की गई है। इस प्रकार ब्रेल लिपि के प्रबल समर्थक होने के कारण जब उन्होंने डॉ. ड्यूफ़ो से बार-बार अनुरोध किया कि वे विद्यालय में इस लिपि के प्रयोग की आज्ञा दे दें तो इस अनुरोध को स्वीकार करते हुए उन्होंने अनौपचारिक रूप से इसके प्रयोग की अनुमति दे दी। इस प्रकार कुछ समय बाद एक बार फिर इस विद्यालय के विद्यार्थी तथा शिक्षक निर्भय होकर पढ़ने-लिखने के लिए केवल ब्रेल लिपि का ही प्रयोग करने लगे।

1851 तक पैरिस के अंधविद्यालय के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों में ब्रेल लिपि इतनी लोकप्रिय हो गई कि वे इसे दृष्टिहीनों के लिए पढ़ने-लिखने का सर्वोत्तम साधन मानने लगे और उन्होंने डॉ. ड्यूफ़ो से अनुरोध किया कि वे इस लिपि को औपचारिक रूप से मान्यता दिलाने तथा इसके आविष्कार के कारण लुई ब्रेल को राष्ट्रीय सम्मान प्रदान करने के लिए फ्रांस की सरकार से प्रार्थना करें। उनके इस अनुरोध को स्वीकार करते हुए डॉ. ड्यूफ़ो ने सरकार को उपर्युक्त दोनों बातों के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा, किंतु उनके इस प्रार्थना-पत्र पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इस प्रकार लुई ब्रेल को उनके जीवन-काल में न तो राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुआ और न ही ब्रेल लिपि को सरकार की ओर से औपचारिक मान्यता मिली। फिर भी मृत्यु से पूर्व वे यह बात अच्छी तरह जान गए थे कि उनका आविष्कार, ब्रेल लिपि दृष्टिहीनों के लिए बहुत उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण है। यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि इस बात से लुई ब्रेल को अत्यधिक आत्म-संतोष प्राप्त हुआ होगा, क्योंकि यही उनकी कठोर साधना और अथक प्रयास का सब से बड़ा पुरस्कार था।

●

अध्याय-12

ब्रेल लिपि के प्रसार का प्रयास

यह बड़ी विचित्र स्थिति है कि मृत्यु के पश्चात् ही संसार में अधिकतर महान व्यक्तियों के महत्त्व को अनुभव किया जाता रहा है। लुई ब्रेल के साथ भी यही हुआ। 1852 में उनकी मृत्यु के कुछ समय बाद ही पैरिस के अंधविद्यालय में ब्रेल लिपि को मान्यता दे दी गई और इस विद्यालय का संपूर्ण शैक्षणिक कार्य केवल इसी लिपि के माध्यम से किया जाने लगा। इसके दो वर्ष उपरांत 1854 में फ्रांस की सरकार ने भी ब्रेल लिपि को औपचारिक मान्यता प्रदान कर दी। धीरे-धीरे यूरोप के अन्य देशों में भी ब्रेल लिपि की उपयोगिता को समझा जाने लगा और इसके प्रसार तथा प्रचार का प्रयास आरंभ हो गया। परंतु अनेक वर्षों तक फ्रांस से बाहर इस लिपि के प्रसार की गति बहुत धीमी रही, क्योंकि उस समय प्राय: सभी देशों में यह विचार बहुत प्रबल था कि दृष्टिहीनों को ऐसी कोई वर्णमाला नहीं सिखाई जानी चाहिए जिसका प्रयोग दृष्टिवान व्यक्ति न करते हों। उस समय यह माना जाता था कि ऐसी वर्णमाला दृष्टिहीनों को शेष समाज से अलग कर देगी जिस से उन्हें बहुत हानि पहुंचेगी। यही कारण है कि बहुत-से शिक्षक तथा अधिकारी ब्रेल लिपि की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए भी अपने अंधविद्यालयों में इसके प्रयोग की अनुमति देने के लिए तैयार नहीं होते थे।

परंतु कुछ विचारशील व्यक्ति ब्रेल लिपि के विरुद्ध उपर्युक्त ग़लत धारणा को समाप्त करने के लिए निरंतर प्रयास कर रहे थे। इसी कारण धीरे-धीरे सभी यूरोपीय देशों में इस लिपि के प्रसार का प्रयास होने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्ध में पैरिस तथा अन्य यूरोपीय देशों की राजधानियों में अनेक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुए जिनमें इन देशों के प्रतिनिधियों ने दृष्टिहीनों के लिए केवल ब्रेल लिपि के विशेष महत्त्व को स्वीकार किया।

उपनिदेशक, डॉ. ज़ोज़ेफ ग्वादे (Joseph Guadet) भी इसकी उपयोगिता को समझने लगे और धीरे-धीरे इसके प्रबल समर्थक हो गए। इसी कारण उन्होंने डॉ. ड्यूफ़ो से अनुरोध किया कि वे स्कूल में इसके प्रयोग की अनुमति दे दें। वे डॉ. ड्यूफ़ो के मित्र थे और उन्हीं की सहायता से अंधविद्यालय के उपनिदेशक नियुक्त हुए थे। दृष्टिहीनों की शिक्षा के विषय में लगभग अनभिज्ञ होने के बावजूद वे बहुत विद्वान तथ खुले दिमाग के व्यक्ति थे और इसी लिए डॉ. ड्यूफ़ो ने उन्हें विद्यायल के शिक्षा-विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया था। डॉ. ग्वादे विद्यार्थियों को ब्रेल लिपि द्वारा सरलता और शीघ्रता से पढ़ते-लिखते देखकर इसे अन्य सभी स्पर्श लिपियों की तुलना में कहीं अधिक उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण मानने लगे थे। 22 फ़रवरी, 1844 को पैरिस के अंधविद्यालय के नए भवन का उद्घाटन हुआ था और इस अवसर पर भाषण देते हुए डॉ. ग्वादे ने ब्रेल लिपि की बहुत प्रशंसा की थी। उन्होंने कहा था कि श्री बारबिये की रात्रि-लेखन-विधि मे जो दोष थे उन्हें दूर करके लुई ब्रेल ने बहुत ही सरल तथा श्रेष्ठ लिपि का आविष्कार किया है। उन्होंने इस बात पर भी खेद प्रकट किया था कि लुई ब्रेल और उनकी महत्त्वपूर्ण लिपि की उपेक्षा की गई है। इस प्रकार ब्रेल लिपि के प्रबल समर्थक होने के कारण जब उन्होंने डॉ. ड्यूफ़ो से बार-बार अनुरोध किया कि वे विद्यालय में इस लिपि के प्रयोग की आज्ञा दे दें तो इस अनुरोध को स्वीकार करते हुए उन्होंने अनौपचारिक रूप से इसके प्रयोग की अनुमति दे दी। इस प्रकार कुछ समय बाद एक बार फिर इस विद्यालय के विद्यार्थी तथा शिक्षक निर्भय होकर पढ़ने-लिखने के लिए केवल ब्रेल लिपि का ही प्रयोग करने लगे।

1851 तक पैरिस के अंधविद्यालय के विद्यार्थियों तथा शिक्षकों में ब्रेल लिपि इतनी लोकप्रिय हो गई कि वे इसे दृष्टिहीनों के लिए पढ़ने-लिखने का सर्वोत्तम साधन मानने लगे और उन्होंने डॉ. ड्यूफ़ो से अनुरोध किया कि वे इस लिपि को औपचारिक रूप से मान्यता दिलाने तथा इसके आविष्कार के कारण लुई ब्रेल को राष्ट्रीय सम्मान प्रदान करने के लिए फ्रांस की सरकार से प्रार्थना करें। उनके इस अनुरोध को स्वीकार करते हुए डॉ. ड्यूफ़ो ने सरकार को उपर्युक्त दोनों बातों के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा, किंतु उनके इस प्रार्थना-पत्र पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इस प्रकार लुई ब्रेल को उनके जीवन-काल में न तो राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त हुआ और न ही ब्रेल लिपि को सरकार की ओर से औपचारिक मान्यता मिली। फिर भी मृत्यु से पूर्व वे यह बात अच्छी तरह जान गए थे कि उनका आविष्कार, ब्रेल लिपि दृष्टिहीनों के लिए बहुत उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण है। यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि इस बात से लुई ब्रेल को अत्यधिक आत्म-संतोष प्राप्त हुआ होगा, क्योंकि यही उनकी कठोर साधना और अथक प्रयास का सब से बड़ा पुरस्कार था।

•

अध्याय-12

ब्रेल लिपि के प्रसार का प्रयास

यह बड़ी विचित्र स्थिति है कि मृत्यु के पश्चात् ही संसार में अधिकतर महान व्यक्तियों के महत्त्व को अनुभव किया जाता रहा है। लुई ब्रेल के साथ भी यही हुआ। 1852 में उनकी मृत्यु के कुछ समय बाद ही पैरिस के अंधविद्यालय में ब्रेल लिपि को मान्यता दे दी गई और इस विद्यालय का संपूर्ण शैक्षणिक कार्य केवल इसी लिपि के माध्यम से किया जाने लगा। इसके दो वर्ष उपरांत 1854 में फ्रांस की सरकार ने भी ब्रेल लिपि को औपचारिक मान्यता प्रदान कर दी। धीरे-धीरे यूरोप के अन्य देशों में भी ब्रेल लिपि की उपयोगिता को समझा जाने लगा और इसके प्रसार तथा प्रचार का प्रयास आरंभ हो गया। परंतु अनेक वर्षों तक फ्रांस से बाहर इस लिपि के प्रसार की गति बहुत धीमी रही, क्योंकि उस समय प्राय: सभी देशों में यह विचार बहुत प्रबल था कि दृष्टिहीनों को ऐसी कोई वर्णमाला नहीं सिखाई जानी चाहिए जिसका प्रयोग दृष्टिवान व्यक्ति न करते हों। उस समय यह माना जाता था कि ऐसी वर्णमाला दृष्टिहीनों को शेष समाज से अलग कर देगी जिस से उन्हें बहुत हानि पहुंचेगी। यही कारण है कि बहुत-से शिक्षक तथा अधिकारी ब्रेल लिपि की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए भी अपने अंधविद्यालयों में इसके प्रयोग की अनुमति देने के लिए तैयार नहीं होते थे।

परंतु कुछ विचारशील व्यक्ति ब्रेल लिपि के विरुद्ध उपर्युक्त ग़लत धारणा को समाप्त करने के लिए निरंतर प्रयास कर रहे थे। इसी कारण धीरे-धीरे सभी यूरोपीय देशों में इस लिपि के प्रसार का प्रयास होने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के उतरार्ध में पैरिस तथा अन्य यूरोपीय देशों की राजधानियों में अनेक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुए जिनमें इन देशों के प्रतिनिधियों ने दृष्टिहीनों के लिए केवल ब्रेल लिपि के विशेष महत्त्व को स्वीकार किया।

यहां यह बता देना आवश्यक है कि ब्रिटेन में ब्रेल लिपि के प्रयोग के मार्ग में बहुत बड़ी बाधाएं उपस्थित हुईं जिन्हें दूर करने में काफ़ी समय लगा। 1868 में इस देश में दृष्टिहीनों के लिए 'मून', 'फ्राई', 'ऐल्स्टन' तथा 'गॉल' नामक चार उभरी हुई स्पर्श लिपियां प्रचलित थीं और ये सभी सामान्य वर्णमाला पर ही आधारित थीं। ब्रिटेन के विभिन्न अंधविद्यालयों में इन अलग-अलग चार स्पर्श लिपियों का प्रयोग किया जा रहा था जिसके फलस्वरूप दृष्टिहीन विद्यार्थी परस्पर पत्र-व्यवहार नहीं कर पाते थे। इसके अतिरिक्त एक अंधविद्यालय में छपी पुस्तक दूसरे अंधविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए बिल्कुल व्यर्थ होती थी। इस प्रकार उस समय दृष्टिहीनों की शिक्षा से संबंधित यह अराजकतापूर्ण स्थिति बहुत दु:खद थी। हम अध्याय 14 में देखेंगे कि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में भारतीय दृष्टिहीनों को भी इसी कष्टदायक स्थिति का सामना करना पड़ा था। जिसे समाप्त करने में लगभग पचास वर्ष लग गए थे। परंतु यहां इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है कि ब्रिटेन के दृष्टिहीन व्यक्तियों को इस दु:खद स्थिति से किसने और कैसे छुटकारा दिलाया।

सब से पहले 'डॉ. टी.आर. आर्मिटेज' ('Dr. T.R.Armitage') ने 1868 में उपर्युक्त दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति को सामाप्त करने का प्रयास आरंभ किया। दृष्टिहीनता के कारण उन्हें अपना चिकित्सा-संबंधी व्यवसाय छोड़ना पड़ा था। यह उनके जीवन में बहुत बड़ी दुर्घटना थी, किंतु वे इस से निराश नहीं हुए और उन्होंने अपना शेष जीवन दृष्टिहीनों के कल्याण-कार्य में लगा देने का निश्चय किया जिनकी शिक्षा में उनकी विशेष रुचि थी। सर्वप्रथम डॉ. आर्मिटेज ने विभिन्न स्पर्श लिपियों के प्रयोग के कारण इस क्षेत्र में उत्पन्न अव्यवस्था और अराजकता को दूर करने का निश्चय किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि इस संबंध में अंतिम निर्णय स्वयं दृष्टिहीन ही कर सकते हैं, दृष्टिवान व्यक्ति नहीं। इसी कारण उन्होंने 1868 में एक समिति की स्थापना की जिसमें ऐसे सुशिक्षित दृष्टिहीन व्यक्ति थे जिन्हे उस समय प्रचलित सभी स्पर्श लिपियों का पर्याप्त ज्ञान था।

लगभग दो वर्षों तक ब्रेल लिपि तथा अन्य स्पर्श लिपियों का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् 1870 में इस समिति ने निर्णय दिया कि दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए ब्रेल लिपि ही सर्वोत्तम माध्यम है। इस निर्णय के बाद डॉ. आर्मिटेज ब्रेल लिपि के प्रचार-कार्य में लग गए। उन्हें लगभग तेरह वर्षों तक निरंतर यह कठिन कार्य करना पड़ा। अंतत: 1883 में ब्रिटेन के अंधविद्यालयों ने अन्य सभी स्पर्श लिपियों को छोड़कर ब्रेल लिपि को स्वीकार कर लिया। इसके पश्चात् डॉ. आर्मिटेज ने ब्रेल में पुस्तकें मुद्रित करने के लिए लंदन में एक संस्था स्थापित की जो आज संसार में 'दि रॉयल नेशनल इंस्टिट्यूट फ़ॉर दि ब्लाइंड' के नाम से विख्यात है।

इस प्रकार ब्रिटेन में ब्रेल लिपि का प्रचार तथा प्रसार करने और उसे उचित मान्यता दिलाने के लिए डॉ. आर्मिटेज ने बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया जिसके कारण उन्हें पर्याप्त यश एवं सम्मान भी प्राप्त हुआ।

यूरोप की अपेक्षा अमेरिका में ब्रेल लिपि का प्रचार तथा प्रसार बहुत ही धीमी गति से हो सका। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक वहां दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए ब्रेल लिपि के साथ-साथ अन्य कई स्पर्श लिपियों का प्रयोग भी हो रहा था जिनमें 'न्यूयॉर्क प्वॉइंट' प्रमुख थी। बहुत-से अधिकारी इस विचार को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे कि दृष्टिहीनों को केवल उसी वर्णमाला द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए जिसका प्रयोग दृष्टिवान व्यक्ति करते हैं। इसी कारण अनेक वर्षों तक ब्रेल लिपि के साथ-साथ सामान्य अक्षरों पर आधारित दृष्टिगत स्पर्श लिपियों का भी प्रयोग होता रहा। यह स्थिति लगभग वैसी ही थी जैसी 1883 से पूर्व ब्रिटेन में थी। इससे दृष्टिहीनों की शिक्षा में बहुत बड़ी बाधा पड़ रही थी, क्योंकि एक ही पुस्तक अथवा पत्रिका को विभिन्न स्पर्श लिपियों में मुद्रित करना पड़ता था जिसके फलस्वरूप समय तथा धन का अत्यधिक अपव्यय होता था।

उपर्युक्त दुखद स्थिति को समाप्त करने के लिए 1910 में 'लिटल रॉक' में एक सम्मेलन हुआ जिसमें ब्रेल लिपि को दृष्टिहीनों की शिक्षा का एकमात्र माध्यम स्वीकार किया गया। परंतु उक्त सम्मेलन के इस महत्त्वपूर्ण निर्णय को कार्यान्वित करने में सात वर्ष और लग गए। अंतत: 1917 में अन्य सभी स्पर्श लिपियों को छोड़कर केवल ब्रेल लिपि को संपूर्ण अमेरिका में दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक तक संसार के अधिकतर देशों में ब्रेल लिपि का प्रसार हो गया था और दृष्टिहीनों को इसी लिपि के माध्यम से शिक्षा दी जाने लगी थी।

पिछले कई दशकों में ब्रेल लिपि का बहुत प्रसार तथा विकास हुआ है और इसने अंतर्राष्ट्रीय रूप ग्रहण कर लिया है। आज स्थिति यह है कि इस लिपि के बिना दृष्टिहीनों की शिक्षा अपूर्ण ही समझी जाती है। संसार के सभी अंधविद्यालयों में मुख्यत: ब्रेल लिपि द्वारा विद्यार्थियों को पढ़ने-लिखने की शिक्षा दी जा रही है। इस समय विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में दृष्टिहीनों के लिए ब्रेल वर्णमाला उपलब्ध है और प्रतिवर्ष लाखों पुस्तकें तथा पत्रिकाएं ब्रेल में प्रकाशित की जा रही हैं। पाश्चात्य देशों में बड़े-बड़े पुस्तकालय दृष्टिहीनों को ब्रेल साहित्य देकर उनके ज्ञान में वृद्धि कर रहे हैं। एशिया तथा अफ्रीका में भी अब काफ़ी पुस्तकें और पत्रिकाएं ब्रेल में प्रकाशित हो रही हैं, किन्तु अभी इस दिशा में बहुत अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है।

वस्तुतः आज ब्रेल लिपि दृष्टिहीनों के लिए बहुत बड़ा वरदान सिद्ध हो रही है। इसकी सहायता से वे शिक्षा-संबंधी उच्चतम उपाधियां तथा ऐसे व्यवसायों में रोज़गार प्राप्त कर रहे हैं जो कुछ दशक पूर्व उनके लिए असंभव माने जाते थे। इतना ही नहीं, ब्रेल लिपि द्वारा उनके लिए मानचित्रों को समझना, घड़ी देखकर सही समय बताना और कुछ खेल खेलना भी सुगम हो गया है। वस्तुतः दृष्टिवान व्यक्तियों के जीवन में जो स्थान सामान्य वर्णमाला का है उससे भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दृष्टिहीनों के जीवन में ब्रेल लिपि का है। इसका कारण यह है कि वे केवल पढ़ने-लिखने के लिए ही नहीं, अपितु अन्य बहुत-से क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने के लिए भी इस लिपि का प्रयोग करते हैं। इस विषय की अधिक विस्तृत चर्चा हम प्रस्तुत पुस्तक के अंतिम अध्याय में करेंगे। यहां इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि ब्रेल लिपि दृष्टिहीनों की शिक्षा और सर्वांगीण प्रगति का मूल आधार है।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि मुख्यतः ब्रेल लिपि के कारण ही वास्तव में दृष्टिहीनों के लिए ज्ञान के वे द्वार खुले हैं जो शताब्दियों से उनके लिए बंद पड़े थे। इस ज्ञान के फलस्वरूप आज संसार में दृष्टिहीन व्यक्ति आश्चर्यजनक प्रतीत होने वाली जो महान सफलताएं प्राप्त कर रहे हैं उनमें लुई ब्रेल तथा उनके क्रांतिकारी आविष्कार, ब्रेल लिपि का बहुत बड़ा योगदान है।

●

अध्याय-13

दस बिंदु-प्रणाली और राफ़ीग्राफ

बहुत कम लोग जानते हैं कि लुई ब्रेल ने अपनी ब्रेल लिपि के अतिरिक्त एक अन्य अद्भुत प्रणाली का भी आविष्कार किया था जिसे उन्होंने 'दस बिंदु-प्रणाली' ('Decapoint System') की संज्ञा दी थी। यह एक ऐसी प्रणाली थी जो दृष्टिहीनों को दृष्टिवान व्यक्तियों के साथ सामान्य लिपि के माध्यम से लिखित संपर्क स्थापित करने में सक्षम बनाती थी। स्वयं अपने लिए पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त दृष्टिहीन व्यक्तियों के समक्ष एक बहुत बड़ी समस्या यह भी थी कि वे दूर रहने वाले अपने दृष्टिवान संबंधियों तथा मित्रों से लिखित रूप में कोई संपर्क स्थापित नहीं कर पाते थे। दृष्टिहीन होने के कारण पत्र लिखने के लिए उन्हें अनिवार्यतः दृष्टिवान व्यक्तियों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। दूसरों पर इस निर्भरता के फलस्वरूप ऐसी अनेक गंभीर समस्याएं उत्पन्न होती थीं जिनका सामना सभी दृष्टिहीनों को करना पड़ता था और जो उनके लिए बहुत कष्टदायक होती थीं।

पैरिस के अंधविद्यालय में पढ़ते हुए लुई ब्रेल ने स्वयं देखा था कि कुछ दृष्टिहीन विद्यार्थी इतने ग़रीब थे कि वे छुट्टियों में घर नहीं जा पाते थे और उन्हें कोई लेने भी नहीं आता था। इसी कारण वे विद्यालय में या आस-पास रहने वाले दृष्टिवान व्यक्तियों से ही अपने संबंधियों को पत्र लिखवाते थे। यह स्थिति उनके लिए निश्चय ही बहुत दुःखद थी। वे ऐसी कोई बात नहीं लिखवा पाते थे जो गोपनीय हो, किंतु जिसकी सूचना देना उनके लिए आवश्यक हो। इसके अतिरिक्त पत्र लिखने के लिए उन्हें दृष्टिवान व्यक्ति सरलतापूर्वक मिलते ही नहीं थे और जो मिलते भी थे वे अधिक शिक्षित न होने के कारण ठीक ढंग से पत्र नहीं लिख पाते थे। पत्र लिखवाने वाला दृष्टिहीन व्यक्ति यह कभी नहीं जान पाता था कि उसने जो लिखवाया है श्रुतलेखक (Scribe) ने वही लिखा है या कुछ और। फिर कुछ

श्रुतलेखकों का हस्त-लेख तो इतना ख़राब तथा दोषपूर्ण होता था कि दूसरों के लिए उसे पढ़ना अत्यंत कठिन हो जाता था। स्वयं लुई ब्रेल ने श्रुतलेखकों से जो पत्र लिखवाए थे उनमें से कुछ पत्र ऐसे हैं जो आज उपलब्ध होते हुए भी पढ़े नहीं जा सके हैं।

वस्तुतः दृष्टिहीनों के लिए ये समस्याएं केवल लिखने तक ही सीमित नहीं थीं; अपने दृष्टिवान संबंधियों तथा मित्रों से मिलने वाले पत्रों को पढ़वाने के लिए भी उन्हें इसी प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता था। इस तरह लुई ब्रेल ने बड़ी तीव्रता से इस दुःखद स्थिति का अनुभव किया था कि दृष्टिहीन तथा दृष्टिवान व्यक्तियों में लिखित रूप से परस्पर संपर्क स्थापित करने के लिए कोई विधि या प्रणाली नहीं है। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि तब तक टाइपराइटर का आविष्कार नहीं हुआ था; इसका आविष्कार लुई ब्रेल की मृत्यु के पद्रंह वर्ष बाद 1867 में ही हो पाया था।

बहुत संवेदनशील तथा बुद्धिमान व्यक्ति होने के कारण लुई ब्रेल अच्छी तरह जानते थे कि दृष्टिहीन और दृष्टिवान व्यक्तियों में लिखित संपर्क स्थापित करने वाली विधि या प्रणाली का अभाव दृष्टिहीनों को समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित करने के उस प्रयास में बहुत बड़ी बाधा है जो वर्षों पहले दृष्टिहीन व्यक्तियों की शिक्षा के जनक वालोंतं ओए ने प्रारंभ किया था। इसी महत्त्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने निश्चय किया कि वे स्वयं एक ऐसी प्रणाली का विकास करेंगे जिसकी सहायता से दृष्टिहीन तथा दृष्टिवान दोनों परस्पर लिखित संपर्क स्थापित कर सकें। ब्रेल लिपि के आविष्कार के पश्चात् उन्होंने इस प्रणाली के विकास के लिए प्रयत्न आरंभ किया। इस नई प्रणाली के आविष्कार के लिए उन्होंने अपनी ब्रेल लिपि की ही सहायता ली थी, अतः इसे भी ब्रेल लिपि की भांति 'बिंदु-आधारित प्रणाली' कहा जा सकता है। लुई ब्रेल ने स्वयं अपनी इस नवीन प्रणाली को 'दस बिंदु-प्रणाली' की संज्ञा दी है, क्योंकि इसमें दस बिंदुओं का प्रयोग किया जाता है।

बाल्यावस्था से ही दृष्टिहीन होने के बावजूद लुई ब्रेल को सामान्य अक्षरों की आकृति का बहुत अच्छा ज्ञान था; वे अच्छी तरह जानते थे कि ये अक्षर कैसे बनते हैं और इनकी मूल विशेषताएं क्या हैं। प्रत्येक अक्षर की आकृति का भली-भांति विश्लेषण करने के पश्चात् वे इसी निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि सभी सामान्य अक्षरों के केंद्र में एक वर्गाकार(Square) होता है जिसकी आकृति को उभरे हुए चार बिंदुओं द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। अक्षर के शेष ऊपर तथा निचले भागों को आवश्यकतानुसार वर्गाकार के ऊपर या नीचे तीन उभरे हुए बिंदु लगाकर दिखाया जा सकता है। इस महत्त्वपूर्ण जानकारी से उन्हें अपनी नई प्रणाली के

विकास में बहुत सहायता मिली। उन्होंने दस बिंदुओं के आधार पर सभी सामान्य अक्षरों का निर्माण किया जिन्हें दृष्टिहीनों के साथ-साथ दृष्टिवान व्यक्ति भी पढ़ सकते थे। दृष्टिहीन इन्हें अंगुलियों से छू कर पढ़ते थे और दृष्टिवान इनकी आकृतियों को देख कर।

लुई ब्रेल ने एक विशेषयंत्र की सहायता से मोटे कागज़ पर दस बिंदुओं द्वारा सभी सामान्य अक्षरों की विभिन्न आकृतियों को उभारा जिन्हें देख कर भली-भांति पहचाना जा सकता था। इन उभरे हुए सामान्य अक्षरों को छू कर ऐसे दृष्टिहीन व्यक्ति भी पढ़ सकते थे जिन्हें इनकी आकृतियों का पूरा ज्ञान होता था। इसी कारण उक्त नई प्रणाली द्वारा वे जो कुछ लिखते थे उसे स्वयं भी पढ़ कर देख सकते थे कि वह ठीक लिखा गया है या नहीं। दृष्टिवान व्यक्ति भी इस प्रणाली की सहायता से दृष्टिहीनों को पत्र लिख कर उन से संपर्क स्थापित कर सकते थे।

अब यह देखना रोचक तथा उपयोगी होगा कि लुई ब्रेल की इस दस बिंदु-प्रणाली के माध्यम से सामान्य अक्षर कैसे लिखे और पढ़े जाते थे। इस कार्य के लिए उन्होंने एक विशेष कलम (Stylus) तथा लकड़ी या धातु की बनी पट्टिका (Board) का प्रयोग किया था। इस पट्टिका के ऊपर तारों से बनी एक विशेष जाली (Grid) लगी होती थी जिसमें कुल एक सौ छेद बनाए गए थे। मोटे कागज़ को इस जाली के नीचे पट्टिका पर रखा जाता था जिसके ऊपर नरम चमड़ा या कपड़ा लगा होता था ताकि कागज़ में आवश्यक लचक पैदा की जा सके। लिखने वाला व्यक्ति कलम को इन छेदों में डाल कर उसे दबाने से एक-एक अक्षर की आकृति बनाता था। प्रत्येक अक्षर की विशेष आकृति बनाने के लिए वह कलम से केवल उन्हीं बिंदुओं को उभारता था जो उसके लिए निश्चित किए गए थे। इस तरह प्रत्येक अक्षर की आकृति बनाने के लिए पट्टिका पर बनी जाली में छेदों की सहायता से अलग-अलग बिंदु उभारे जाते थे।

लुई ब्रेल ने प्रत्येक अक्षर के लिए अलग-अलग बिंदुओं की संख्या निश्चित की थी जिन से उसकी विशेष आकृति बनती थी और जिनकी अधिकतम संख्या दस हो सकती थी। अपनी इस दस बिंदु-प्रणाली को सुचारू रूप से समझाने के उद्देश्य से उन्होंने उभरे हुए सामान्य अक्षरों की एक विशेष तालिका (Table) भी बनाई थी जिसे पढ़कर दृष्टिहीन व्यक्ति प्रत्येक अक्षर के लिए निश्चित किए गए बिंदुओं की संख्या को जान सकते थे। इस प्रकार लुई ब्रेल ने अपनी ब्रेल लिपि के अतिरिक्त एक ऐसी दस बिंदु-प्रणाली का भी आविष्कार किया था जिसे दृष्टिहीन तथा दृष्टिवान दोनों पढ़ सकते थे और जिसके माध्यम से वे परस्पर लिखित संपर्क स्थापित करने में समर्थ होते थे।

इस दस बिंदु-प्रणाली के विकास में लुई ब्रेल के एक दृष्टिहीन मित्र आलेक्ज़ांद्र फूरनिए (Alexandre Fournier) ने भी उनकी बहुत सहायता की थी। वे उन्हें इसके लिए आवश्यक पट्टिका तथा तारों की जाली बना कर दिया करते थे। फूरनिए के लिए ये वस्तुएं बनाना कोई कठिन कार्य नहीं था, क्योंकि मुद्रण सामग्री से संबंधित उनकी अपनी दुकान थी। लुई ब्रेल के अनुरोध पर उन्होंने ये वस्तुएं वैसी ही बनाई थीं जैसी वे चाहते थे, अत: वे उनके इस कार्य से अंतत: बहुत संतुष्ट हुए थे। इस तरह दस बिंदु-प्रणाली के विकास में फूरनिए का भी पर्याप्त योगदान रहा था।

फूरनिए के अतिरिक्त लुई ब्रेल से परिचित एक अन्य दृष्टिहीन व्यक्ति,पिएर फ्रांसूआ विक्तर फूको (Pierre-Francois-Victor Foucault) ने भी उनकी दस बिंदु-प्रणाली के विकास तथा प्रसार-प्रचार में बहुत सहायता की थी। दृष्टिहीन होते हुए भी वे बहुत कुशल यंत्रकार (Mechanic) थे और लुई ब्रेल से पहले पैरिस के अंधविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर चुके थे। यह ठीक है कि लुई ब्रेल एक ऐसी आश्चर्यजनक प्रणाली का आविष्कार करने में पूर्णत: सफल हुए थे जिसे दृष्टिहीन तथा दृष्टिवान दोनों पढ़ सकते थे, किंतु इसकी प्रक्रिया बहुत धीमी एवं कठिन थी और यह कागज़ पर बहुत अधिक स्थान भी घेरती थी। इसके द्वारा पूरे पृष्ठ पर थोड़े-से शब्द ही लिखे जा सकते थे। इन्हीं सब कठिनाइयों के कारण इस प्रणाली का अधिक उपयोग नहीं हो पाता था अंतत: फूको ने ही इसकी उक्त समस्याओं का समाधान किया।

इस प्रणाली की उपर्युक्त कठिनाइयों को दूर करने तथा इसे अधिक सक्षम बनाने के लिए फूको ने एक विशेष यंत्र (Machine) का आविष्कार किया जिसे राफ़ीग्राफ (Raphigraphe) कहा जाता था। यह राफ़ीग्राफ मोटे कागज़ पर सुई द्वारा बिंदु डाल कर लिखने वाला एक ऐसा यंत्र था जो लुई ब्रेल की दस बिंदु-प्रणाली के माध्यम से कम स्थान में बहुत शीघ्र लिखता था। स्वयं दृष्टिहीन व्यक्ति तथा कुशल यंत्रकार होने के कारण वे इस प्रणाली की समस्याओं को अच्छी तरह समझते थे, अत: उन्होंने बहुत परिश्रमपूर्वक अपने इस नए यंत्र राफ़ीग्राफ का निर्माण किया था। वस्तुत: यह कहना अनुचित न होगा कि उनका यह राफ़ीग्राफ टाइपराइटर का पूर्वज था जिसका निर्माण उन्होंने टाइपराइटर के आविष्कार से लगभग तीन दशक पूर्व 1840 में कर लिया था।

तत्कालीन उद्योग-जगत् में फूको के इस नए यंत्र की बहुत सराहना की गई थी। इसका प्रमाण यह है कि 1843 में फ्रांस के 'राष्ट्रीय उद्योग-प्रोत्साहन-समाज' द्वारा फूको को उनके उक्त राफ़ीग्राफ के लिए प्लैटिनम पदक दे कर सम्मानित किया गया था। इस प्रकार यह राफ़ीग्राफ लुई ब्रेल की दस बिंदु-प्रणाली के विकास, प्रसार और प्रचार में उस समय बहुत सहायक सिद्ध हुआ था। परंतु दुर्भाग्य की बात यह है कि टाइपराइटर के आविष्कार के बाद इस राफ़ीग्राफ तथा लुई ब्रेल की उक्त प्रणाली को लगभग भुला दिया गया। यही कारण है कि आज बहुत कम लोग उनकी दस बिंदु-प्रणाली के आविष्कार से परिचित हैं जो उतना ही मौलिक था जितनी ब्रेल लिपि।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि टाइपराइटर में वे सब विशेषताएं नहीं हैं जो लुई ब्रेल की दस बिन्दु-प्रणाली में थीं। वस्तुत: टाइपराइटर दृष्टिहीन तथा दृष्टिवान व्यक्तियों में संपर्क स्थापित करने से संबंधित समस्या का केवल आंशिक समाधान ही कर पाता है। यह ठीक है कि इसके द्वारा दृष्टिहीन व्यक्ति कुछ भी लिखने में आत्म-निर्भर हो जाता है और इस तरह सामान्य लिपि के माध्यम से वह दृष्टिवान व्यक्तियों के साथ लिखित संपर्क स्थापित कर सकता है। परंतु इस से उसकी समस्या का पूर्ण समाधान नहीं होता। इसका कारण यह है कि वह न तो अपनी टाइप की हुई सामग्री को स्वयं पढ़ सकता है और न ही दृष्टिवान व्यक्ति द्वारा लिखित सामग्री को। परंतु लुई ब्रेल की दस बिंदु प्रणाली में दृष्टिहीन व्यक्ति के समक्ष ये दोनों समस्याएं नहीं आती थीं। इसके द्वारा वह लिखने में आत्म-निर्भर होने के साथ-साथ अपनी लिखी हुई सामग्री को स्वयं भी पढ़ सकता था और इस प्रणाली को जानने वाले दृष्टिवान व्यक्ति द्वारा लिखित सामग्री को भी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि टाइपराइटर के विपरीत लुई ब्रेल की दस बिंदु-प्रणाली दृष्टिहीनों को दृष्टिवान व्यक्तियों के साथ लिखित संपर्क स्थापित करने में पूर्णत: आत्म-निर्भर बनाती थी।

•

अध्याय-14

भारती ब्रेल

वैसे तो भारत में कुछ ऐसे दृष्टिहीन व्यक्ति हुए हैं जिनकी महानता और विद्वत्ता निर्विवाद है। हिंदी-साहित्य के महाकवि सूरदास तथा स्वामी दयानंद सरस्वती के गुरु ,स्वामी वृजानंद इस तथ्य के स्पष्ट उदाहरण हैं। परंतु इस प्रकार के कुछ थोड़े-से अपवादों को छोड़कर भारत में दृष्टिहीनों की शिक्षा की स्थिति बहुत दयनीय रही है। इस संबंध में यदि पाश्चात्य जगत् के साथ भारत की तुलना की जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में दृष्टिहीन व्यक्तियों की शिक्षा के लिए प्रयास लगभग एक सौ वर्ष बाद ही आरंभ हुआ था।

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, पैरिस में वालोंतं ओए ने 1784 में विश्व के प्रथम अंधविद्यालय की स्थापना कर दी थी। परंतु भारत में इसके पश्चात् लगभग एक सौ वर्ष तक ऐसा कोई विद्यालय स्थापित नहीं किया जा सका। सब से पहले 1887 में एक धर्म-प्रचारक ईसाई महिला, सुश्री ऐनी शार्प (Ms. Annie Snarp) द्वारा अमृतसर में ईसाई दृष्टिहीनों के लिए एक विद्यालय की स्थापना की गई थी। इसे ही भारत का प्रथम अंधविद्यालय माना जाता है। इस प्रकार दृष्टिहीनों की शिक्षा के संबंध में भारत पाश्चात्य जगत् की तुलना में कम-से-कम एक सौ वर्ष पीछे ही दिखाई देता है।

उपर्युक्त अंधविद्यालय की स्थापना के पश्चात् भारत के विभिन्न भागों में धीरे-धीरे दृष्टिहीनों के लिए बहुत-से विद्यालय स्थापित किए गए। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक चार दशकों तक भारत के कुछ बड़े नगरों में अनेक अंधविद्यालयों की स्थापना हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में इन विद्यालयों के समक्ष एक बड़ी समस्या यह

थी कि इनमें प्रवेश करने वाले दृष्टिहीन बच्चों को शिक्षा कैसे दी जाए। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी भी विद्यालय के सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए इसमें प्रविष्ट विद्यार्थियों को पढ़ने-लिखने और गणित की समुचित शिक्षा देना अनिवार्य होता है। अंधविद्यालय भी इस अनिवार्य नियम के अपवाद नहीं हो सकते थे। इसी कारण इन विद्यालयों की स्थापना के साथ ही ब्रेल लिपि ने भी भारत में प्रवेश किया। तब तक यह बात प्रमाणित हो चुकी थी कि रेखाओं से निर्मित उभरे हुए सामान्य अक्षरों की स्पर्श लिपियों के स्थान पर ब्रेल लिपि ही दृष्टिहीनों की शिक्षा का एकमात्र सशक्त और प्रभावी माध्यम है, अत: भारत में इस लिपि को अन्य स्पर्श लिपियों के साथ कोई संघर्ष नहीं करना पड़ा। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारे देश में दृष्टिहीनों की शिक्षा के माध्यम के संबंध में कोई समस्या उत्पन्न नहीं हुई। इसके विपरीत वास्तविक स्थिति यह है कि भारत के विभिन्न प्रदेशों में अंधविद्यालयों की स्थापना के साथ-साथ अलग-अलग ब्रेल संहिताओं (Braille Codes) का भी निर्माण तथा विकास होता गया।

भारत में ब्रेल लिपि के विकास के इतिहास से पता चलता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व इस देश में कम-से-कम दस ब्रेल संहिताएं प्रचलित थीं जिनका विभिन्न अंधविद्यालयों में प्रयोग किया जा रहा था। वस्तुत: भारत एक बहु-भाषी देश है जहां अनेक अलग-अलग भाषाएं बोली जाती हैं, अत: इन विद्यालयों के संस्थापकों तथा प्रबंधकों ने अपनी-अपनी आवश्यकता, समझ और रुचि के अनुसार दृष्टिहीन बच्चों को शिक्षा देने के लिए भिन्न-भिन्न ब्रेल संहिताओं का निर्माण कर लिया। विभिन्न प्रदेशों के अंधविद्यालयों में बच्चों को अलग-अलग ब्रेल संहिताएं सिखाई जाती थीं। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो एक ही नगर के दो अंधविद्यालयों में अलग-अलग दो ब्रेल संहिताओं के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी।

इस बात का अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि भारत में ब्रेल संहिताओं की इस भिन्नता के फलस्वरूप दृष्टिहीनों के लिए अनेक गंभीर समस्याएं उत्पन्न होती थीं। इनमें से पहली समस्या तो यह थी कि दो अलग-अलग प्रदेशों के अंधविद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थी ब्रेल में परस्पर पत्र-व्यवहार नही कर पाते थे, क्योंकि वे एक-दूसरे की ब्रेल संहिता नहीं जानते थे। इस तरह ब्रेल लिपि सीख लेने के बावजूद दृष्टिहीनों में पारस्परिक लिखित संपर्क स्थापित नहीं हो पाता था।

उपर्युक्त समस्या के अतिरिक्त अलग-अलग ब्रेल संहिताओं के कारण एक अंधविद्यालय का छात्र दूसरे अंधविद्यालय में जाकर शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता था। ऐसी स्थिति में अधिकतर अंधविद्यालयों के विद्यार्थी ब्रेल जानते हुए भी एक-दूसरे से पूरी तरह कटे रहने के लिए बाध्य हो जाते थे। अंत में ब्रेल संहिताओं की इस भिन्नता से उत्पन्न सब से बड़ी समस्या यह थी कि ऐसे ब्रेल साहित्य का उत्पादन

संभव नहीं था जिसे भारत के सभी दृष्टिहीन व्यक्ति पढ़ सकें। इसके परिणाम बहुत ही हानिकारक होते थे। यदि एक ही भाषा की कोई पुस्तक विभिन्न अंधविद्यालयों में पढ़ाई जाती थी तो उसे उन सब के लिए अलग-अलग ब्रेल संहिताओं में लिखवाना पड़ता था जिस से परिश्रम, समय तथा धन का बहुत अधिक अपव्यय होता था। यह स्थिति केवल दृष्टिहीनों के लिए ही नहीं, अपितु उनकी शिक्षा के लिए कार्य करने वाले दृष्टिवान व्यक्तियों के लिए भी अत्यधिक कष्टदायक थी जिसे दूर करना आवश्यक था।

इसी गंभीर समस्या को ध्यान में रखते हुए दृष्टिहीनों की शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले कुछ विचारशील व्यक्तियों ने सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल संहिता (Common Braille Code) के निर्माण का प्रयास आरंभ किया। भारत में जिन दो व्यक्तियों ने इस दिशा में सब से पहले प्रयत्न किया वे थे श्री जे. नॉल्स (J. Knowles) तथा श्री एल. गार्थवेट (L. Garthwaite) जो ईसाई धर्म-प्रचारक थे। उन्होंने 1902 में जिस ब्रेल संहिता की रचना की थी उसे वे 'ओरियंटल ब्रेल' ('Oriental Braille') कहते थे और उनका दावा था कि इसका प्रयोग केवल भारतीय भाषाओं के लिए ही नहीं, अपितु सभी पूर्वी देशों की भाषाओं के लिए किया जा सकता है। परंतु कुछ विशेष कठिनाइयों के कारण इस ब्रेल संहिता का प्रयोग मुंबई के एक अंधविद्यालय तक ही सीमित रहा। इसके पश्चात् लगभग बीस वर्षों तक इस दिशा में और कोई उल्लेखनीय प्रयास नहीं किया गया।

फिर जनवरी 1922 में कराची अंधविद्यालय के प्रिंसिपल श्री पी.एम. आडवाणी (P.M.Advani) ने तत्कालीन केन्द्रीय परामर्श-शिक्षा-परिषद (Central Advisory Board of Education) की एक बैठक में सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल संहिता का प्रश्न उठाया। परंतु सामाजिक समस्याओं - विशेषत: विकलांग व्यक्तियों कि समस्याओं - के प्रति उदासीन होने के कारण उस समय की ब्रिटिश सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया, अत: अगले सोलह वर्षों तक इस संबंध में कुछ नहीं किया गया। 1938 में श्री पी.एम. आडवाणी ने एक बार फिर उसी शिक्षा-परिषद से भारत के लिए समान ब्रेल संहिता के प्रश्न पर विचार करने का अनुरोध किया। सौभाग्यवश इस बार वे सफल हो गए और उनके अनुरोध को मानकर उक्त शिक्षा-परिषद ने सरकार से ऐसी ब्रेल संहिता के निर्माण के लिए एक समिति बनाने की सिफ़ारिश कर दी। लगभग तीन वर्ष बाद सरकार ने यह समिति बनाई जिसकी पहली बैठक नवम्बर 1941 में हुई। इस समिति में चौदह सदस्य थे और इसने अगले वर्ष 1942 में विशेषज्ञों की एक छोटी समिति बनाकर उसे भारत की समस्त भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल संहिता के निर्माण का काम

सौंप दिया।

परंतु इसके बाद भी ऐसी समान ब्रेल संहिता के निर्माण तथा विकास में लगभग दस वर्ष और लग गए। इसका मुख्य कारण यह था कि उक्त संहिता के लिए काम करने वाले विशषज्ञों में इसके स्वरूप के विषय में तीव्र मतभेद उत्पन्न हो गया था और वे अलग-अलग दो समुदायों में विभाजित हो गए थे। ये दोनों समुदाय समान ब्रेल संहिता के स्वरूप के संबंध में दो भिन्न-भिन्न सिद्धांतों के प्रबल समर्थक थे और प्रत्येक समुदाय अपने सिद्धांत के अनुरूप ही इस संहिता का निर्माण करना चाहता था। इसमें से एक सिद्धांत के समर्थक यह मानते थे कि लुई ब्रेल ने सात पंक्तियों में विभाजित त्रेसठ चिह्नों की ब्रेल लिपि का जो मूल प्रारूप प्रस्तुत किया था उसी के क्रमानुसार सभी भारतीय भाषाओं की वर्णमाला के चिह्नों को निर्धरित किया जाए। उनके इसी सिद्धांत को अनुक्रम-सिद्धांत (The Principal of Concurrent Sequence) कहा जाता है। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी ब्रेल की पहली पंक्ति के प्रथम छह चिह्न - बिंदु-1, बिंदु 1-2, बिंदु 1-4, बिंदु 1-4-5, बिंदु 1-5 और बिंदु 1-2-4 क्रमश: हिन्दी वर्णमाला के प्रथम छह स्वर - 'अ, आ, इ, ई, उ, ऊ' - बनेंगे। इस अनुक्रम-सिद्धांत के अनुसार, अन्य सभी भारतीय भाषाओं की वर्णमाला भी ब्रेल में इसी प्रकार तैयार की जाएगी। 'ओरियंटल ब्रेल' तथा 'यूनिफ़ॉर्म इंडियन ब्रेल' का निर्माण इसी सिद्धांत के आधार पर किया गया था।

परंतु उपर्युक्त अनुक्रम-सिद्धांत बहुत असंतोषप्रद था, क्योंकि इसे स्वीकार कर लेने पर भारतीय भाषाओं के लिए निर्मित समान ब्रेल संहिता में बड़ी गंभीर कठिनाइयां आ सकती थीं। इसकी सब से बड़ी कठिनाई यह थी कि एक ही ब्रेल चिह्न विभिन्न भाषाओं में अलग-अलग ध्वनियों को व्यक्त करता था। उदाहरणार्थ, बिंदु 1-4 अंग्रेजी में 'सी', हिन्दी में 'इ' तथा उर्दू में 'पे' के लिए निर्धारित करना अनिवार्य था। ऐसी स्थिति में बहु-भाषी दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए सभी ब्रेल चिह्नों की अलग-अलग ध्वनियों को याद करना अत्यंत कठिन कार्य था। इसके अतिरिक्त यदि वह एक भाषा की ब्रेल संहिता सीख लेता तो उसे दूसरी भाषा के लिए बिल्कुल अलग ब्रेल संहिता सीखनी पड़ती। इस से स्पष्ट है कि उक्त अनुक्रम-सिद्धांत के आधार पर समस्त भारतीय भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल संहिता तैयार करना पूर्णत: असंभव था। इसी कारण पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात समान ब्रेल संहिता के निर्माण के लिए इस सिद्धांत को छोड़ दिया गया।

ब्रेल-विशेषज्ञों का दूसरा समुदाय भारतीय भाषाओं के लिए समान ब्रेल संहिता का निर्माण उपर्युक्त अनुक्रम-सिद्धांत से बिल्कुल अलग एक अन्य सिद्धांत के आधार पर करना चाहता था। इन विशेषज्ञों का विचार था कि लुई ब्रेल ने विभिन्न ध्वनियों के लिए जो विशेष ब्रेल चिह्न निर्धारित किए हैं यथासंभव उन्हें ही सभी

भाषाओं की समान ध्वनियों अथवा उन से मिलती-जुलती ध्वनियों के लिए स्वीकार किया जाए। उदाहरणार्थ, अंग्रेजी ब्रेल के 'ए', 'बी', 'के' तथा 'पी' के लिए निर्धारित ब्रेल चिह्नों को ही क्रमशः हिन्दी वर्णमाला के 'अ','ब', 'क' और 'प' के लिए स्वीकार किया जाना चाहिए। इस सिद्धांत को 'ध्वनि-साम्य-सिद्धांत' ('The Principle of Phonetic Uniformity') की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि यह मुलतः ध्वनियों की समानता पर ही आधारित है।

डॉ. नीलकंठ राय छत्रपति की इंडियन ब्रेल तथा सर क्लूथा मैकेंज़ी (Clutha Mackenzie) की 'स्टैंडर्ड इंडियन ब्रेल' का निर्माण उपर्युक्त ध्वनि-साम्य-सिद्धांत के आधार पर किया गया था। इस सिद्धांत के स्वरूप से स्पष्ट है कि इसमें लुई ब्रेल की मूल ब्रेल संहिता में विद्यमान चिह्नों के अनुक्रम के स्थान पर उनके द्वारा व्यक्त ध्वनियों को ही महत्त्व दिया गया है। उक्त सिद्धांत की इसी विशेषता के कारण अंततः केवल भारतीय भाषाओं के लिए ही नही, अपितु विश्व की समस्त भाषाओं के लिए भी समान ब्रेल संहिता - जिसे विश्व-ब्रेल कहा जाता है - की रचना इसी ध्वनि-साम्य-सिद्धांत के अनुसार की गई है। इस विषय की विस्तृत चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे।

यहां इस दुःखद तथ्य का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि भारत में समान ब्रेल संहिता की रचना के लिए प्रयास करने वाले विशेषज्ञों में उपर्युक्त अनुक्रम-सिद्धांत तथा ध्वनि-साम्य-सिद्धांत को लेकर जो तीव्र वाद-विवाद चला था उसका निर्णय इस देश में नहीं हो सका। दोनों सिद्धांतों के समर्थक अपने-अपने आग्रह पर दृढ़ रहे। आश्चर्य की बात यह है कि अनुक्रम-सिद्धांत को स्वीकार करने की परंपरा 1902 से चली आ रही थी जब नॉल्स तथा गार्थवेट ने 'ओरियंटल ब्रेल' का निर्माण किया था। यद्यपि 1923 में आयोजित मुंबई के एक सम्मेलन में इस परंपरा का विरोध करते हुए इसे चुनौती दी गई थी, फिर भी यह 1945 तक चलती रही और इसे तत्कालीन सरकार की औपचारिक मान्यता भी मिल गई। परंतु 1945 में सर क्लूथा मैकेंज़ी द्वारा नियुक्त एक अनौपचारिक समिति ने इसे प्रबल चुनौती दी और इसके विरुद्ध दृष्टिहीनों का एक प्रभावी आंदोलन भी संगठित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकारी मान्यता मिलने के बावजूद अनुक्रम-सिद्धांत पर आधारित 'यूनिफ़ॉर्म इंडियन ब्रेल' को 1949 तक भारत की समान ब्रेल संहिता के लिए अंतिम रूप से स्वीकार नहीं किया गया।

सौभाग्यवश उस समय भारत सरकार के शिक्षा-मंत्रालय में संयुक्त सचिव, श्री हुमायूं कबीर ने इस समस्या में व्यक्तिगत रूप से विशेष रुचि ली, क्योंकि वे स्वयं बहुत बड़े शिक्षाविद् थे। उन्होंने अप्रैल 1949 में संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक संगठन 'यूनेस्को' ('UNESCO') को एक लंबा पत्र लिखा

जिसमें इस अंतर्राष्ट्रीय संस्था से आग्रह किया कि वह न केवल भारतीय भाषाओं के लिए, अपितु विश्व की समस्त भाषाओं के लिए समान ब्रेल संहिता की संभावना पर गंभीरतापूर्वक विचार करे। अपने पत्र में उन्होंने इस बात का भी उल्लेख किया कि 1932 से सभी अंग्रेज़ी भाषी देश एक ही 'मानक अंग्रेज़ी ब्रेल' ('Standard-English Braille') का सफलतापूर्वक प्रयोग कर रहे हैं। उनके इस पत्र का जो परिणाम निकला वह संसार के समस्त दृष्टिहीनों के लिए बहुत वांछनीय तथा दूरगामी रहा। इस पत्र में श्री हुमायूं कबीर द्वारा किए गए अनुरोध को स्वीकार करते हुए यूनेस्को ने विश्व-ब्रेल की रचना के लिए प्रयास आरंभ किया जिस पर हम अगले अध्याय में कुछ विस्तार से विचार करेंगे।

मार्च 1950 में 'यूनेस्को' ने पैरिस में एक अंतराष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन आयोजित किया जिसमें विश्व की सभी भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल संहिता के निर्माण पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया और ऐसी संहिता को 'विश्व-ब्रेल'('Global Braille') की संज्ञा दी गई। काफ़ी विचार-विमर्श करने के बाद इस सम्मेलन ने उक्त ब्रेल संहिता के लिए अनुक्रम-सिद्धांत के स्थान पर ध्वनि-साम्य-सिद्धांत को ही अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। अंततः इस सम्मेलन की सिफ़ारिशों के आधार पर भारत सरकार ने समस्त भारतीय भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल संहिता के निर्माण का निश्चय किया जो मूलतः ध्वनि-साम्य-सिद्धांत पर ही आधारित है।

भारत के लिए उपर्युक्त समान ब्रेल संहिता को 'भारती ब्रेल' की संज्ञा दी गई और इसे जनवरी 1951 में 'केंद्रीय परामर्श-शिक्षा-परिषद' के समक्ष प्रस्तुत कर दिया गया। फिर लगभग तीन महीनों के बाद अप्रैल 1951 में उक्त शिक्षा-परिषद ने सारे देश के लिए भारती ब्रेल को अंतिम रूप से अपनी स्वीकृति दे दी। इस प्रकार लगभग पचास वर्षों तक तीव्र वाद-विवाद तथा व्यापक विचार-विमर्श के पश्चात् अंततः संपूर्ण भारत के लिए एक समान ब्रेल संहिता का निर्माण हो सका।

यह प्रसन्नता की बात है कि अब भारती ब्रेल केवल भारत तक सीमित न रहकर अंतर्राष्ट्रीय ब्रेल संहिता बन चुकी है। मलेशिया की मले (Malay) भाषा के लिए पर्याप्त सीमा तक और नेपाल, बंगलादेश तथा श्रीलंका की भाषाओं के लिए पूर्ण रूप से इसी ब्रेल संहिता का प्रयोग किया जा रहा है। यह एक बड़ी सफलता है जो एक लंबे संघर्ष के बाद ही प्राप्त हुई है। जिस भारती ब्रेल के कारण हमारे देश को यह सराहनीय सफलता मिली है उसके निर्माण तथा विकास में श्री हुमायूं कबीर, सर क्लूथा मैकेंज़ी, श्री पी.एम. आडवाणी, श्री नीलकंठ रॉय, श्री लाल आडवाणी, श्री सुनीति कुमार चैटर्जी आदि अनेक महान विचारकों ने किसी-न-किसी रूप में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान किया है जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

•

अध्याय-15

विश्व ब्रेल

फ्रांस से बाहर ब्रेल लिपि का प्रसार लगभग उसी समय से आरंभ हो गया था जिस समय लुई ब्रेल ने अपनी इस लिपि में सभी आवश्यक संशोधन तथा परिवर्तन कर के इसे अंतिम रूप में प्रस्तुत किया था। अपने देश में औपचारिक मान्यता प्राप्त होने से लगभग सत्रह वर्ष पूर्व 1837 में ब्रेल लिपि को बैल्जियम में 'विशेष शिक्षण' के लिए स्वीकार कर लिया गया था, किंतु इसके साथ ही उभरी हुई सामान्य स्पर्श लिपियों का प्रयोग भी किया जा रहा था। इसके पश्चात् 1852 में स्विटज़रलैंड की एक संस्था, 'दृष्टिहीनों के लिए आश्रम' ने भी ब्रेल लिपि को अपना लिया था। यहां यह उल्लेखनीय है कि उक्त दोनों देशों में ब्रेल लिपि का प्रयोग 1854 से पहले ही होने लगा था जब फ्रांस की सरकार ने इस लिपि को औपचारिक मान्यता प्रदान की थी। फिर 1854 में अमेरिका के 'मिसूरी अंधविद्यालय' ने भी ब्रेल लिपि को स्वीकार कर लिया था। इस देश का यह पहला अंधविद्यालय था जिसने दृष्टिहीन बच्चों की शिक्षा के लिए ब्रेल का प्रयोग आरंभ किया था। वस्तुतः उस समय जहां भी दृष्टिहीनों को ब्रेल लिपि उपलब्ध कराई गई, वहां उन्होंने उसे तुरंत अपना लिया, क्योंकि उनके लिए इसके माध्यम से पढ़ना-लिखना अपेक्षाकृत कहीं अधिक सरल था।

ब्रेल लिपि की इसी सरलता के कारण 1854 में फ्रांस द्वारा इसे औपचारिक मान्यता प्राप्त होने के पश्चात् धीरे-धीरे यूरोप के बहुत-से देशों में इसका प्रयोग होने लगा। परंतु ब्रेल के इस प्रसार के फलस्वरूप यूरोप में भी वही समस्या उत्पन्न हुई थी जिसका सामना बाद में भारत को करना पड़ा था। सभी देशों ने अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार मूल ब्रेल संहिता में संशोधन अथवा परिवर्तन करना आरंभ

कर दिया। इसका परिणाम यही हुआ कि इन देशों के दृष्टिहीन व्यक्ति एक-दूसरे की ब्रेल संहिता को नहीं पढ़ पाते थे। इस गंभीर समस्या का समाधान करने के लिए सब से पहले 1873 में आस्ट्रिया की राजधानी, वियाना (Vienna) में दृष्टिहीनों के शिक्षकों का एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, किंतु यह सम्मेलन उक्त समस्या पर विचार करने के लिए एक विशेष समिति बनाने के अतिरिक्त और कुछ न कर सका।

इस सम्मेलन के पांच वर्ष बाद 1878 में एक बार फिर उपर्युक्त समस्या का समाधान करने के लिए पैरिस में एक 'अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस' का आयोजन किया गया जिसमें यूरोप के अधिकतर देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें भारी बहुमत से यह निर्णय किया गया कि सभी देशों में लुई ब्रेल द्वारा निर्मित मूल ब्रेल संहिता का ही प्रयोग किया जाए। वस्तुतः यूरोपीय देशों का यह निर्णय विश्व ब्रेल के निर्माण तथा विकास में एक महत्त्वपूर्ण सोपान था। परंतु उपर्युक्त निर्णय के बावजूद पचास वर्षों से भी अधिक समय तक अमेरिका तथा यूरोप के बहुत-से देशों में ब्रेल के अनेक रूपों का प्रयोग होता रहा।

अंततः 1932 में सभी अंग्रेज़ी भाषी देशों ने एक समान ब्रेल संहिता को स्वीकार कर लिया जिसे 'स्टैंडर्ड इंग्लिश ब्रेल' की संज्ञा दी गई और जिसका प्रयोग इन सब देशों में आज भी सफलता पूर्वक किया जा रहा है। यह ठीक है कि इस ब्रेल संहिता को 'विश्व ब्रेल' नहीं कहा जा सकता, किंतु फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि संसार के बहुत-से देशों द्वारा एक ही समान ब्रेल संहिता की इस स्वीकृति ने विश्व ब्रेल के निर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त अवश्य किया। परंतु इसके पश्चात् फिर कुछ वर्षों तक विश्व ब्रेल के लिए कोई उल्लेखनीय प्रयास नहीं किया गया।

जैसा कि हम पिछले अध्याय में बता चुके हैं, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अनेक व्यक्तियों तथा संगठनों द्वारा भारत की सभी भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल संहिता के निर्माण का प्रयत्न किया जा रहा था। इसी संदर्भ में श्री हुमायूं कबीर ने 'यूनेस्को' को अप्रैल 1949 में एक लंबा पत्र लिखा था जिसका इस अंतर्राष्ट्रीय संगठन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उनके इस पत्र से अभिप्रेरित होकर 'यूनेस्को' ने संसार की समस्त भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल संहिता की संभावना पर विचार करने के उद्देश्य से मार्च 1950 में पैरिस में एक 'अंतर्राष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन' का आयोजन किया जिसमें भारत सहित एशिया तथा यूरोप के बहुत-से देशों और अमेरिका के ब्रेल विशेषज्ञों ने भाग लिया। डॉ. सुनीति कुमार चैटर्जी तथा श्री लाल आडवाणी ने इस सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व किया था।

पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् उपर्युक्त सम्मेलन ने इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को स्वीकार किया कि विश्व की सभी भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल संहिता

निश्चय ही संभव और वांछनीय है। सारे संसार के लिए इस समान ब्रेल संहिता को ही 'विश्व ब्रेल' की संज्ञा दी गई और ध्वनि-साम्य-सिद्धांत को इसके मूल आधार के रूप में स्वीकार किया गया। उक्त सम्मेलन में भाग लेने वाले अधिकतर प्रतिनिधियों ने 1878 में पैरिस में आयोजित 'अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस' के इस मत का भी समर्थन किया कि लुई ब्रेल द्वारा निर्मित मूल ब्रेल संहिता में कोई संशोधन किए बिना इसे सभी देशों के लिए अपनाया जाए जिसका अर्थ यह था कि इसमें मनमाने परिवर्तन न किए जाएं। इसके साथ ही सम्मेलन ने उस अनुक्रम-सिद्धांत को भी छोड़ देने का निश्चय किया जिसके समर्थक यह कहते थे कि मूल ब्रेल संहिता में दिए गए चिह्नों के क्रमानुसार ही सभी भाषाओं की वर्णमाला तैयार की जानी चाहिए।

उपर्युक्त दिशा-निर्देशों के अतिरिक्त इस 'अंतर्राष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन' ने विश्व ब्रेल के निर्माण के लिए कुछ आवश्यक नियमों का भी प्रतिपादन किया था जो निम्नलिखित हैं:

(1) जहां तक संभव हो, लुई ब्रेल द्वारा निर्मित मूल ब्रेल संहिता में दिए गए प्रत्येक चिह्न को सभी भाषाओं में उसकी मूल ध्वनि अथवा उस से मिलती-जुलती ध्वनि के लिए निर्धारित कर के उनकी ब्रेल संहिताओं में एकरूपता लाई जाए और प्रत्येक चिह्न का प्रयोग उसी कार्य के लिए किया जाए जो वह मूल ब्रेल संहिता में संपन्न करता है। इसका अर्थ यह है कि मूल ब्रेल संहिता की ध्वनियों तथा कार्यों के आधार पर सभी भाषाओं की ब्रेल संहिताओं में यथासंभव एकरूपता लाने का प्रयास किया जाए।

(2) जहां तक संभव हो, प्रत्येक भाषा की ब्रेल संहिता उस भाषा की दृष्टिगत लिपि की पूर्ण प्रतिकृति होनी चाहिए - अर्थात् उसकी दृष्टिगत वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर के लिए यथासंभव एक अलग ब्रेल चिह्न निर्धारित किया जाए ताकि ब्रेल पृष्ठ मुद्रित पृष्ठ की पूर्ण प्रतिलिपि बन सके।

(3) जिन भाषाओं की दृष्टिगत लिपियों में समानता है उनकी ब्रेल संहिताएं भी यथासंभव समान ही होनी चाहिए।

(4) जहां तक संभव हो, एक भाषा-समूह की सभी भाषाओं के लिए समान ब्रेल संहिता तैयार की जाए।

(5) विभिन्न भाषा-समूहों के लिए निर्मित ब्रेल संहिताओं में यथासंभव अधिकतम समानता अथवा संबद्धता होनी चाहिए।

इन नियमों से स्पष्ट है कि उक्त अंतर्राष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन ने संसार की समस्त भाषाओं के लिए यथासंभव एक समान ब्रेल संहिता की सिफ़ारिश की थी और इसे ही 'विश्व ब्रेल' का नाम दिया था। परंतु इसके साथ ही सम्मेलन ने यह

सिफ़ारिश भी की थी कि प्रत्येक भाषा के लिए उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार अलग ब्रेल संहिता का निर्माण किया जा सकता है जो यथासंभव उपर्युक्त नियमों के अनुरूप हो। इस प्रकार 1950 में 'यूनेस्को' द्वारा आयोजित यह अंतर्राष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन विश्व ब्रेल के निर्माण और विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय प्रयास था जिसने ब्रेल लिपि को 'विश्व-लिपि' बनाने में उस समय बहुत बड़ी भूमिका निभाई थी।

उपर्युक्त सिफ़ारिशों के अतिरिक्त इस 'अंतर्राष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन' ने यह सिफ़ारिश भी की थी कि 'यूनेस्को ' के तत्त्वावधान में एक छोटी 'विश्व ब्रेल परिषद ' ('World Braille Council') का निर्माण किया जाए जो संसार की सभी भाषाओं के लिए निर्मित ब्रेल संहिताओं में यथासंभव एकरूपता बनाए रखने का कार्य करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उक्त प्रस्तावित 'विश्व ब्रेल परिषद' को मुख्यत: निम्नलिखित कार्य सौंपने की सिफ़ारिश की गई थी :

(1) ब्रेल-विषयक नियमों की व्याख्या और उनके कार्यान्वयन के संबंध में विभिन्न देशों को परामर्श देना।

(2) भविष्य में अलग-अलग देशों में ब्रेल का जो विकास होगा उसमें समुचित समन्वय स्थापित करना।

(3) समय-समय पर उपस्थित होने वाली ब्रेल-संबंधी समस्याओं के विषय में परामर्श देना।

(4) ब्रेल-विषयक सूचनाओं को एकत्र करने वाले केंद्र के रूप में कार्य करना।

'अंतर्राष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन ' की उपर्युक्त सिफ़ारिश के आधार पर 1951 में 'यूनेस्को ' द्वारा 'विश्व ब्रेल परिषद ' की स्थापना कर दी गई थी। अप्रैल 1949 में लिखे श्री हुमायूं कबीर के पत्र के उत्तर में यूनेस्को ने भारत सरकार को औपचारिक रूप से इस परिषद की स्थापना की सूचना भी दी थी। श्री लाल आडवाणी ने भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में उक्त 'विश्व ब्रेल परिषद ' में भाग लिया था। इस प्रकार भारत सरकार की ओर से श्री हुमायूं कबीर ने भारतीय भाषाओं तथा विश्व की समस्त भाषाओं के लिए एक समान ब्रेल संहिता ('विश्व ब्रेल') की रचना के लिए जो सराहनीय प्रयास आरंभ किया था वह पर्याप्त सीमा तक सफल रहा।

यहां यह उल्लेखनीय है कि अंतर्राष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन की जिन सिफ़ारिशों का वर्णन ऊपर किया गया है और जिनके आधार पर विश्व ब्रेल की संभावना के विषय में इस सम्मेलन में विचार किया गया था वे सब 1949 में 'यूनेस्को' द्वारा नियुक्त एक विशेष परामर्श समिति के सुविचारित निष्कर्षों पर ही आधारित थीं। इस

समिति की बैठक दिसम्बर 1949 में हुई थी और इसके सदस्यों में सर क्लूथा मैकेंज़ी, डॉ. सुनीति कुमार चैटर्जी, श्री लाल आडवाणी आदि अनेक ब्रेल विशेषज्ञ सम्मिलित थे। गहन विचार-विमर्श के पश्चात इस 'परामर्श समिति' ने 'विश्व ब्रेल' के निर्माण की संभावना के संबंध में यूनेस्को को अपनी जो सिफ़ारिशें भेजी थीं उन्हीं को दृष्टिगत रखते हुए पूर्वोल्लिखित 'अंतर्राष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन' का आयोजन किया गया था। इस प्रकार यह कहना अनुचित न होगा कि 'विश्व ब्रेल' की रचना के प्रयास में भारत का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा और इसमें श्री हुमायूं कबीर, सर क्लूथा मैकेंज़ी, डॉ. सुनीति कुमार चैटर्जी तथा श्री लाल आडवाणी ने बहुत बड़ी भूमिका निभाई थी।

यह ठीक है कि मार्च 1950 में आयोजित उपर्युक्त अंतर्राष्ट्रीय ब्रेल सम्मेलन ने विश्व ब्रेल के निर्माण के लिए पूरी निष्ठा और ईमानदारी से प्रयत्न किया था। परंतु दुर्भाग्य की बात यह है कि ऐसी वैश्विक ब्रेल की रचना के लिए जिस 'विश्व ब्रेल परिषद' की स्थापना की गई थी वह वास्तव में कोई कार्य नहीं कर सकी। इतना ही नहीं, इस परिषद की कोई बैठक ही नहीं हुई। अब तो उस 'विश्व ब्रेल परिषद' का अस्तित्व भी समाप्त हो चुका है जिसकी स्थापना 1951 में की गई थी। वर्तमान 'विश्व दृष्टिहीन संघ' ('World Blind Union') विश्व ब्रेल की समस्याओं का समाधान करने के संबंध में कुछ प्रयास अवश्य कर रहा है, किंतु, जहां तक हमारी जानकारी है, इसमें उसे अभी तक कोई विशेष सफलता नहीं मिल पाई है।

परंतु उपर्युक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा कि विश्व ब्रेल के निर्माण की दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई है। जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, 1932 में संसार के सभी अंग्रेज़ी भाषी देशों ने एक समान ब्रेल संहिता को स्वीकार कर लिया था जिसे 'मानक अंग्रेज़ी ब्रेल' ('Standard English Braille') की संज्ञा दी गई थी। फिर 1976 में अंग्रेज़ी भाषी देशों ने 'उत्तर अमेरिका ब्रेल प्राधिकरण' ('Braille Authority of North America') और इसके लगभग 15 वर्ष बाद 1991 में 'अंग्रेज़ी ब्रेल-विषयक अंतर्राष्ट्रीय परिषद' ('International Council on English Braille') की स्थापना कर के संसार के समस्त अंग्रेज़ी भाषी देशों की ब्रेल संहिता में एकरूपता लाने का प्रयास किया।

हम देख चुके हैं कि इस से पूर्व 1951 में भारत सरकार ने भी सभी भारतीय भाषाओं के लिए 'भारती ब्रेल' को स्वीकार किया था जो शीघ्र ही 'अंतर्राष्ट्रीय ब्रेल संहिता' बन गई थी। अब पाश्चात्य देशों द्वारा संगीत, गणित तथा विज्ञान-संबंधी ब्रेल संहिताओं में भी एकरूपता स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। इसी प्रकार वर्तमान 'विश्व दृष्टिहीन संघ' ने भी 'विश्व ब्रेल परिषद' की स्थापना की है।

हम आशा करते हैं कि यह नवीन अंतर्राष्ट्रीय परिषद विश्व की कुछ जटिल ब्रेल-विषयक समस्याओं का समाधान कर सकेगी। इस प्रकार उपर्युक्त सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि ब्रेल लिपि को वास्तविक अर्थ में 'विश्व-लिपि' बनाने का यथासंभव प्रयास किया जा रहा है।

वस्तुत: विश्व की विभिन्न ब्रेल संहिताओं में एकरूपता स्थापित करने के लिए 1878 में पैरिस में आयोजित 'अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस' द्वारा जो महान प्रयास आरंभ किया गया था उसमें अब तक पर्याप्त सफलता प्राप्त हो चुकी है। लुई ब्रेल ने 1825 में जिस क्रांतिकारी ब्रेल लिपि का आविष्कार किया था उसे निम्नलिखित पांच दृष्टिकोणों से विचार करने पर वास्तव में 'विश्व-लिपि' की संज्ञा दी जा सकती है:

(1) इस समय विश्व की सभी भाषाओं में किसी-न-किसी रूप में ब्रेल का प्रयोग किया जा रहा है।

(2) लुई ब्रेल ने जिन छह बिंदुओं के आधार पर ब्रेल लिपि का निर्माण किया था उनकी संख्या तथा उनके स्वरूप में कोई परिवर्तन किए बिना उसे मूल रूप में ही संपूर्ण विश्व द्वारा स्वीकार किया गया है।

(3) लुई ब्रेल ने विराम चिह्नों के लिए जो बिंदु निर्धारित किए थे उन्हीं का प्रयोग सारे संसार में हो रहा है।

(4) इसी प्रकार संपूर्ण विश्व में एक दो तीन आदि संख्याएं आज भी उसी तरीके से लिखी जा रही हैं जो स्वयं लुई ब्रेल ने निश्चित किया था।

(5) सारे संसार में ब्रेल ही एक ऐसी लिपि है जो ध्वनि-साम्य-सिद्धांत पर आधारित है - अर्थात्, जिसके बहुत-से अक्षरों का प्रयोग सभी भाषाओं में उन्हीं ध्वनियों अथवा उन से मिलती-जुलती ध्वनियों के लिए हो रहा है जो लुई ब्रेल ने निर्धारित की थीं। इस प्रकार उपर्युक्त सभी तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि ब्रेल वास्तव में एक 'विश्व-लिपि' है।

ब्रेल लिपि के आविष्कार के पश्चात् विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप हुई तकनीकी (Technical) प्रगति ने संसार में इस लिपि के प्रसार-प्रचार में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। लुई ब्रेल की मृत्यु के लगभग चालीस वर्ष बाद 1892 में फ्रेंक एच. हॉल (Frank H. Hall) ने एक ब्रेलराइटर का आविष्कार किया था जिसे 'हॉल ब्रेलराइटर' ('Hall Braillewriter') का नाम दिया गया था। यह यंत्र सामान्य टाइपराइटर के समान ही था, किंतु इसमें केवल छह 'कीज़' ('Keys') और स्थान खाली छोड़ने के लिए एक 'स्पेश बार' ('Space Bar') था। उस समय इस ब्रेलराइटर द्वारा प्रति मिनट एक सौ शब्द लिखे जा सकते थे। ब्रेल लिपि की रचना के बाद यह पहला आविष्कार था जिस से दृष्टिहीनों को शीघ्र ब्रेल-लेखन

की सुविधा प्राप्त हुई थी। इसके पश्चात् अगले कुछ दशकों में अनेक प्रकार के ब्रेलराइटर बनाए गए, किंतु इनमें से इस समय 'परकिन्स ब्रेलर' ('Perkins Brailler') का ही सर्वाधिक उपयोग किया जा रहा है जिसका निर्माण सब से पहले डेविड अब्राहम (David Abraham) द्वारा 1951 में किया गया था।

ब्रेल लिपि के प्रसार में सहायक होने वाला दूसरा महत्त्वपूर्ण आविष्कार था 'इन्टरपॉइन्ट ब्रेल' ('Interpoint Braille') लिखने का तरीका। यह 'इन्टरपॉइन्ट ब्रेल ' पृष्ठ के दोनों ओर लिखी जाती है, अत: इस से कागज़ की बहुत बचत होती है। परंतु ऐसी ब्रेल का उपयोग प्राय: ब्रेल प्रेस में किया जा सकता है। जहां तक मुझे ज्ञात है, अभी तक ऐसे किसी ब्रेलराइटर का आविष्कार नहीं किया गया है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति स्वयं अपने हाथ से इन्टरपॉइन्ट ब्रेल लिख सके। फिर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ब्रेल प्रेस में इन्टरपॉइन्ट ब्रेल के प्रयोग से दृष्टिहीनों के लिए ब्रेल साहित्य के उत्पादन में बहुत सहायता मिली है जिसके फलस्वरूप ब्रेल लिपि का व्यापक प्रचार तथा प्रसार हुआ है।

कुछ दशक पूर्व कम्प्यूटर के आविष्कार ने तो त्वरित ब्रेल-लेखन और ब्रेल साहित्य के उत्पादन में बहुत बड़ी क्रांति उत्पन्न कर दी है। अब कम्प्यूटरीकृत ब्रेल प्रेस (Computerized Braille Press) द्वारा ब्रेल मुद्रण की गति इतनी तेज हो चुकी है कि लगभग चार दशक पहले उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इस समय ऐसे ब्रेल मुद्रक (Braille Embosser) उपलब्ध हैं जो ब्रेल के आठ सौ अक्षर प्रति सैकेंड मुद्रित कर सकते हैं। कम्प्यूटर के फलस्वरूप ब्रेल मुद्रण में हुई इस अभूतपूर्व प्रगति के कारण अब ब्रेल पुस्तकें मुद्रित करने में बहुत कम समय लगता है जो दृष्टिहीनों के लिए बहुत बड़ा वरदान है।

इस प्रकार हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि कम्प्यूटर के आविष्कार ने ब्रेल लिपि को वास्तविक अर्थ में विश्वव्यापी लिपि बनाने में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

•

अध्याय-16

ब्रेल लिपि का भविष्य

1825 में ब्रेल लिपि के आविष्कार के बाद पिछले 183 वर्षों से यह लिपि किसी-न-किसी रूप में दृष्टिहीनों की शिक्षा और उनके प्रशिक्षण तथा रोज़गार से संबंधित आवश्यकताओं की पूर्ति करती रही है। इस संपूर्ण दीर्घकालीन अवधि में ब्रेल लिपि को अनेक प्रकार की गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। सर्वप्रथम इसे उन उभरी हुई सामान्य स्पर्श लिपियों (Line Types) के साथ कठिन प्रतियोगिता करनी पड़ी जिनका प्रयोग इसके आविष्कार से कुछ दशक पहले ही आरंभ हो गया था। इन स्पर्श लिपियों के अनेक आविष्कारक प्रभावशाली दृष्टिवान व्यक्ति थे जिनकी तुलना में दृष्टिहीन लुई ब्रेल का महत्त्व उस समय बहुत कम था। इसके अतिरिक्त उस युग में दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए कार्य करने वाले लगभग सभी व्यक्ति यह मानते थे कि दृष्टिहीन बच्चों को उसी सामान्य वर्णमाला के माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिए जिसका प्रयोग दृष्टिवान व्यक्ति करते हैं। ये दो ऐसे मुख्य कारण थे जो ब्रेल लिपि को औपचारिक मान्यता दिए जाने में निरंतर बाधा डालते रहे। परंतु इस लिपि ने अपनी सरलता तथा अद्‌भुत क्षमता द्वारा अंतत: सभी स्पर्श लिपियों को परास्त करके उन पर विजय प्राप्त की और इस प्रकार उपर्युक्त गंभीर चुनौती का सफलतापूर्वक सामना किया। वस्तुत: ब्रेल लिपि की यह पहली बड़ी परीक्षा थी जिसमें वह पूरी तरह सफल हुई और अंत में विश्व लिपि बनी।

समस्त स्पर्श लिपियों को पराजित करने के पश्चात् ब्रेल लिपि को दूसरी गंभीर चुनौती का सामना तब करना पड़ा जब संसार के सभी देशों के अंधविद्यालयों में इस लिपि के बहुत-से अलग-अलग रूप प्रचलित हो गए। हम देख चुके हैं कि स्वयं भारत इस बात का स्पष्ट उदाहरण था। यह एक ऐसी दु:खद स्थिति थी जिसके फलस्वरूप ब्रेल लिपि का वह मूल उद्देश्य ही समाप्त हो गया था जिसके लिए लुई

ब्रेल ने इसका आविष्कार किया था। यह उद्देश्य था संसार के सभी दृष्टिहीनों को शिक्षा के माध्यम से एक-दूसरे के साथ जोड़ना। जब एक ही देश अथवा राज्य के विभिन्न अंधविद्यालयों में ब्रेल के अलग-अलग रूपों का प्रयोग किया जाने लगा तो दृष्टिहीन व्यक्ति इसे सीख लेने के बावजूद परस्पर जुड़ नहीं पाए जिस से इसके आविष्कार का मूल उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। परंतु धीरे-धीरे विश्व के बहुत-से विचारशील व्यक्तियों ने इस दुःखद स्थिति को समझा और इसे दूर करने के लिए प्रयास आरंभ किया जिसमें वे अंततः पर्याप्त सीमा तक सफल हुए। जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, इन सब व्यक्तियों के इसी प्रयास के परिणामस्वरूप आज ब्रेल लिपि वास्तविक अर्थ में एक विश्व लिपि बन चुकी है और इस दृष्टि से यह संसार की अन्य सभी सामान्य लिपियों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ प्रमाणित हुई है। इस प्रकार ब्रेल लिपि ने पहली चुनौती की भांति उपर्युक्त दूसरी गंभीर चुनौती का भी सफलतापूर्वक सामना किया है और इसमें भी वह पूर्णतः विजयी रही है।

ब्रेल लिपि के समक्ष तीसरी बड़ी चुनौती तब आई जब विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में प्रगति के कारण बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ऐसे अनेक विद्युत उपकरणों का आविष्कार हुआ जिन्हें दृष्टिहीनों की शिक्षा और उनके मनोरंजन के लिए आवश्यक समझा जाने लगा। इन उपकरणों में कैसेट रिकॉर्डर, सी.डी., कृत्रिम ध्वनि में पढ़ने वाली मशीनें, कम्प्यूटर आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विद्युत उपकरणों को हम 'श्रव्य उपकरण' कह सकते हैं, क्योंकि इनका प्रयोग ध्वनियों अथवा शब्दों को सुनने पर ही आधारित है। इन श्रव्य उपकरणों के आविष्कार के बाद कुछ लोग यह कहने लगे कि दृष्टिहीनों को इनके माध्यम से अधिक सरलतापूर्वक शिक्षा दी जा सकती है, अतः इसके लिए अब ब्रेल की आवश्यकता नहीं है। इन लोगों का विचार था कि दृष्टिहीनों की शिक्षा के लिए ब्रेल की पुस्तकों के बजाय कैसेट या सी.डी. पर रिकॉर्ड की गई 'बोलती पुस्तकों' का प्रयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार वे यह भी मानते थे कि दृष्टिहीन व्यक्ति ब्रेल के माध्यम से पुस्तकेंपढ़ने के स्थान पर कृत्रिम ध्वनि में पढ़ने वाली मशीनों की सहायता से अधिक शीघ्रतापूर्वक मुद्रित पुस्तकें पढ़ सकते हैं।

ब्रेल लिपि को अनावश्यक सिद्ध करने के लिए ऐसे लोगों ने इसकी कुछ कठिनाइयों के आधार पर अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित दो तर्क भी प्रस्तुत किए हैं :

(1) उनका कथन है कि ब्रेल के माध्यम से पढ़ने की गति बहुत धीमी होती है जिसके फलस्वरूप दृष्टिहीनों को कोई पुस्तक या पत्रिका पढ़ने में दृष्टिवान व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक समय लगाना पड़ता है, अतः इस से उनकी

शैक्षणिक प्रगति में बाधा पड़ती है।

(2) ब्रेल लिपि के विरुद्ध इन लोगों का दूसरा तर्क यह है कि इसमें मुद्रित पुस्तकें इतनी भारी होती हैं और इतना अधिक स्थान घेरती हैं कि उन्हें संभालना बहुत कठिन हो जाता है। इन पुस्तकों के अधिक भार के कारण इन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने साथ ले जाने में भी काफ़ी कठिनाई होती है। अपने इन तर्कों द्वारा नवीन विद्युत उपकरणों के समर्थक आधुनिक वैज्ञानिक युग में ब्रेल लिपि को अनावश्यक तथा बहुत पिछड़ा हुआ माध्यम सिद्ध करने का प्रयास करते हैं।

आधुनिक विद्युत श्रव्य उपकरणों द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त चुनौती ब्रेल लिपि के समक्ष शायद अब तक पेश की गई सब से बड़ी चुनौती है, क्योंकि यह इस लिपि की कुछ अंतर्निहित अनिवार्य कठिनाइयों पर आधारित है। परंतु मेरा विचार है कि ब्रेल लिपि में इस गंभीर चुनौती का भी सफलतापूर्वक सामना करने की पर्याप्त क्षमता है। यह ठीक है कि इस लिपि की वे सीमाएं तथा कठिनाइयां हैं जो उक्त चुनौती के समर्थकों ने बताई हैं और जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। परंतु फिर भी यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि आज भी ब्रेल लिपि का कोई सक्षम तथा प्रभावी विकल्प नहीं है और निकट भविष्य में भी ऐसे किसी विकल्प की संभावना दिखाई नहीं देती। इसका कारण यह है कि यह लिपि दृष्टिहीन व्यक्तियों को अनेक ऐसे कार्य संपन्न करने में समर्थ बनाती है जो वे किसी अन्य उपकरण के माध्यम से नहीं कर सकते।

ब्रेल लिपि की सहायता से दृष्टिहीन व्यक्ति जो आवश्यक तथा उपयोगी कार्य कर सकते हैं उन्हें मुख्य तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है - शैक्षणिक, व्यावसायिक और विविध।

सर्वप्रथम ब्रेल लिपि ही शिक्षा प्राप्त करने वाले दृष्टिहीन बच्चे को वास्तविक अर्थ में 'साक्षर' बना सकती है - अर्थात् इसके माध्यम से ही वह पढ़ना, लिखना और गणित सीख सकता है। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि जो व्यक्ति स्वयं पढ़ना, लिखना और गणित-संबंधी समस्याओं का समाधान करना जानता है उसे ही सामान्यतः 'साक्षर' माना जाता है। इसी प्रकार शुद्ध भाषा सीखने तथा लिखने के लिए शब्दों की वर्तनी (Spellings) और विराम चिह्नों का समुचित ज्ञान आवश्यक है जिसे दृष्टिहीन व्यक्ति ब्रेल लिपि की सहायता से ही प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त यदि कोई दृष्टिहीन व्यक्ति विज्ञान, भूगोल तथा गणित को ठीक-ठीक समझना चाहता है तो उसके लिए इन तीनों विषयों को ब्रेल के माध्यम से पढ़ना अनिवार्य है, क्योंकि इसके बिना वह इनका सही ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। यही बात कविता - विशेषतः विदेशी भाषा की कविता - के विषय में भी कही जा सकती

है। ऐसी कविता को स्वयं पढ़े बिना उसे भली-भांति समझना अत्यंत कठिन है। इसी कारण दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए उसे ब्रेल द्वारा पढ़ना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दृष्टिहीन व्यक्ति उपर्युक्त सभी शैक्षणिक कार्य केवल ब्रेल लिपि के माध्यम से ही सफलतापूर्वक संपन्न कर सकता है, किसी श्रव्य उपकरण द्वारा नहीं।

शैक्षणिक कार्यों की भांति अधिकतर व्यावसायिक कार्यों को भी कुशलतापूर्वक संपन्न करने के लिए दृष्टिहीन व्यक्ति को ब्रेल लिपि का ही सहारा लेना पड़ता है। इस समय दृष्टिहीन व्यक्ति जो अनेक प्रकार के व्यवसाय कर रहे हैं उनमें से अधिकतर व्यवसायों के लिए ब्रेल लिपि बहुत उपयोगी तथा सहायक सिद्ध होती है। यह सर्वविदित तथ्य है कि वर्तमान युग में दृष्टिहीनों के लिए व्यावसायिक क्षेत्र बहुत विस्तृत हो चुका है। अब वे दो-तीन परंपरागत व्यवसायों तक ही सीमित न रह कर ऐसे बहुत-से व्यवसायों में अद्‌भुत सफलता प्राप्त कर रहे हैं जो कुछ ही दशक पहले उनके लिए लगभग असंभव माने जाते थे। इस समय भारत तथा अन्य देशों में ऐसे अनेक सफल दृष्टिहीन व्यक्ति हैं जिन्होंने शिक्षा, प्रशासन, साहित्य, पत्रकारिता, लेखन, वकालत, संगीत, व्यापार, बैंकिंग, चिकित्सा आदि विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। उनकी इस सफलता में ब्रेल लिपि का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसकी सहायता से वे दृष्टिवान व्यक्तियों के समान ही अपने सभी व्यावसायिक दायित्व कुशलतापूर्वक संपन्न कर सकते हैं और कर रहे हैं।

वस्तुतः दृष्टिहीनों की इस व्यावसायिक कुशलता में ब्रेल लिपि ठीक वही भूमिका निभाती है जो दृष्टिवान व्यक्तियों की व्यावसायिक सफलता में सामान्य लिपि। जिस प्रकार किसी दृष्टिवान व्यक्ति के लिए सामान्य लिपि की सहायता के बिना अपने व्यावसायिक कार्य में सराहनीय सफलता प्राप्त करना संभव नहीं है, उसी प्रकार दृष्टिहीन व्यक्ति भी ब्रेल लिपि का प्रयोग किए बिना अपने व्यावसायिक कार्य में पूर्णतः सफल और आत्म-निर्भर नहीं हो सकता। इस दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दृष्टिहीनों के शैक्षणिक कार्यों की भांति उनके व्यावसायिक कार्यों के संबंध में भी श्रव्य उपकरण ब्रेल लिपि का स्थान नहीं ले सकते, अतः यह लिपि उनके लिए अपरिहार्य है।

शिक्षा तथा व्यवसाय के अतिरिक्त जीवन के अन्य बहुत-से क्षेत्रों में भी दृष्टिहीनों के लिए ब्रेल लिपि का विशेष महत्त्व है। उदाहरणार्थ, इस लिपि की सहायता से दृष्टिहीन व्यक्ति ताश, लूडो, कैरम आदि खेल सकते हैं; घड़ी में सही समय मालूम कर सकते हैं; गोपनीयता बनाए रखते हुए अपना व्यक्तिगत हिसाब-किताब रख सकते हैं; ब्रेल डायरी बना कर सभी आवश्यक पते तथा फ़ोन नम्बर

लिख सकते हैं और अपने कार्यालय अथवा घर में रखी फ़ाइलों पर ब्रेल लेबल लगाकर उन्हें आवश्यकतानुसार तुरंत ढूंढ़ सकते हैं। इसी प्रकार दृष्टिहीन गृहिणियां रसोई में रखे सभी डिब्बों पर ब्रेल लेबल लगाकर खाना बनाने में पर्याप्त सीमा तक आत्म-निर्भर हो सकती हैं। यदि बिजली, फ़ोन आदि के बिल ब्रेल में उपलब्ध हों और यदि ब्रेल में मत-पत्र की सुविधा प्राप्त हो तो दृष्टिहीन व्यक्ति अपने बिल चुकाने तथा मत-दान करने में भी आत्म-निर्भर हो सकते हैं। इसी प्रकार ब्रेल लिपि का उपयोग करते हुए दृष्टिहीन व्यक्ति किसी भी समय और किसी भी स्थान पर पुस्तकें अथवा पत्रिकाएं पढ़ सकते हैं जिसके लिए बिजली की कोई आवश्यकता नहीं है। यहां यह उल्लेखनीय है कि ये सब ऐसे काम हैं जिनके लिए ब्रेल के स्थान पर किसी श्रव्य उपकरण का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस से दृष्टिहीनों के जीवन में ब्रेल लिपि की व्यापक तथा अनिवार्य भूमिका पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि आधुनिक युग में विद्युत श्रव्य उपकरणों ने ब्रेल लिपि के समक्ष जो गंभीर चुनौती प्रस्तुत की है उस से निपटने में यह लिपि पूरी तरह सक्षम है।

यहां यह याद रखना भी आवश्यक है कि यदि ब्रेल लिपि की कुछ कठिनाइयां हैं तो विद्युत श्रव्य उपकरणों की भी अपनी समस्याएं हैं जिनकी उपेक्षा करना उचित नहीं होगा। सर्वप्रथम ये उपकरण प्रायः इतने महंगे होते हैं कि साधारण दृष्टिहीन व्यक्ति इन्हें सरलतापूर्वक ख़रीद नहीं पाते। इतना ही नहीं, इन उपकरणों के प्रयोग और रखरखाव पर भी काफ़ी धनराशि ख़र्च होती है जिसके कारण ये सामान्य दृष्टिहीनों की पहुंच से बाहर हो जाते हैं। कम्प्यूटर तथा कृत्रिम आवाज़ में पढ़ने वाली मशीनें इस बात के स्पष्ट उदाहरण हैं। इन कठिनाइयों के अतिरिक्त उक्त उपकरणों के प्रयोग के लिए बिजली अनिवार्य है जो साधारण दृष्टिहीन व्यक्तियों को सर्वत्र और सदा उपलब्ध नहीं होती। ऐसी स्थिति में वे इन उपकरणों से कोई लाभ नहीं उठा पाते।

उपर्युक्त समस्याओं के साथ-साथ कुछ श्रव्य उपकरणों की एक कठिनाई यह भी है कि उन्हें दृष्टिहीन व्यक्ति सभी स्थानों पर सरलतापूर्वक अपने साथ नहीं ले जा सकते। कृत्रिम ध्वनि में पढ़ने वाली बड़ी मशीनें इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। ऐसे श्रव्य उपकरणों के विपरीत ब्रेल पत्रिका या पुस्तक को अपने साथ कहीं भी ले जाना दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए अपेक्षाकृत अधिक सुगम होता है। अंत में कैसेट्स का सरलतापूर्वक प्रयोग करने के लिए भी ब्रेल लिपि की सहायता लेना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि ब्रेल लेबल के बिना बहुत-से कैसेट्स में से किसी मनोबांछित कैसेट को ढूंढ़ने में काफ़ी कठिनाई होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ब्रेल लिपि

की भांति श्रव्य उपकरण भी कठिनाइयों तथा समस्याओं से मुक्त नहीं हैं।

परंतु श्रव्य उपकरणों की कठिनाइयों के विषय में ऊपर जो कुछ कहा गया है उस से यह निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा कि दृष्टिहीनों के लिए इनका कोई महत्त्व नहीं है। इसके विपरीत वास्तविक स्थिति यह है कि आधुनिक युग में जिस द्रुत गति से ज्ञान का निरंतर विस्तार हो रहा है उसे देखते हुए दृष्टिहीनों के लिए भी यह आवश्यक हो गया है कि वे कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त करें। श्रव्य उपकरण उनकी इस आवश्यकता की पूर्ति में निश्चय ही उनके लिए बहुत सहायक हो सकते हैं। ब्रेल के माध्यम से समुचित शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् वे इन उपकरणों की सहायता से यथासंभव शीघ्र ज्ञानार्जन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त वे इन उपकरणों द्वारा कहानी, उपन्यास, नाटक तथा अन्य मनोरंजक पुस्तकें भी तेज़ गति से पढ़ सकते हैं। इस प्रकार शीघ्र ज्ञानार्जन तथा मनोरंजन की दृष्टि से ये श्रव्य उपकरण दृष्टिहीनों के लिए निश्चय ही बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वस्तुतः ब्रेल लिपि तथा श्रव्य उपकरणों के तुलनात्मक महत्त्व के संबंध में उचित एवं तर्कसंगत दृष्टिकोण यही है कि ये उपकरण इस लिपि का स्थान तो नहीं ले सकते, किंतु ये इसके पूरक के रूप में अवश्य ही दृष्टिहीनों के जीवन में एक बड़ी भूमिका निभा सकते हैं और इसी दृष्टिकोण के अनुरूप इनका प्रयोग किया जाना चाहिए।

भारत में ब्रेल के आगमन के साथ ही इसे दो प्रमुख समस्याओं का सामना करना पड़ा – ब्रेल साहित्य की कमी और समुचित ब्रेल प्रशिक्षण का अभाव। हम देख चुके हैं कि बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में भारत में बहुत-सी ब्रेल संहिताएं प्रचलित थीं, अतः उस समय देश-व्यापी ब्रेल साहित्य का उत्पादन नहीं हो सका। 1951 में 'भारती ब्रेल' की स्वीकृति के साथ ही भारत सरकार द्वारा देहरादून में केंद्रीय ब्रेल प्रेस की स्थापना की गई जो इस देश की पहली ब्रेल प्रेस थी। इसके बाद भारत के विभिन्न नगरों में अनेक ब्रेल प्रेसों की स्थापना हुई, किंतु दुर्भाग्यवश ब्रेल पुस्तकों के उत्पादन में कोई विशेष प्रगति नहीं हो सकी। इसी कारण दृष्टिहीन बच्चों को ब्रेल में पाठ्य पुस्तकें नहीं मिलीं जिसके फलस्वरूप उनमें ब्रेल सीखने की अधिक रुचि उत्पन्न नहीं हुई।

यह सौभाग्य की बात है कि पिछले कुछ वर्षों से 'ऑल इंडिया कन्फैडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड', 'नेशनल फैडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड', 'नेशनल एसोसिएशन फ़ॉर दि ब्लाइंड' आदि अनेक संस्थाएं दृष्टिहीनों को पाठ्य पुस्तकें तथा विविध प्रकार का मनोरंजक और ज्ञानवर्धक साहित्य ब्रेल में उपलब्ध करा रही हैं जिस से दृष्टिहीन बच्चों एवं वयस्कों की ब्रेल में कुछ रुचि बढ़ी है। यह स्थिति निश्चय ही ब्रेल लिपि के उज्जवल भविष्य का एक शुभ लक्षण है, क्योंकि इसका भविष्य

अधिक-से-अधिक ब्रेल पाठकों की निरंतर बढ़ती हुई रुचि पर ही निर्भर है।

परंतु दुर्भाग्यवश भारत में समुचित ब्रेल-प्रशिक्षण-संबंधी समस्या का कोई संतोषप्रद समाधान अभी तक नहीं हो सका है जो ब्रेल लिपि के भविष्य के लिए बहुत चिंताजनक है। हमारे देश में दृष्टिहीनों के लिए बहुत-से शिक्षक-प्रशिक्षण-केंद्र स्थापित हो जाने के बावजूद इस चिंताजनक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हो रहा है। हमें आशा है कि ब्रेल लिपि के उज्ज्वल भविष्य की कामना करने वाले सभी प्रभावशाली व्यक्ति और दृष्टिहीनों के कल्याण-कार्य से संबंधित सभी संस्थाएं उक्त दुःखद स्थिति को दूर करने का पूरा प्रयास करेंगी।

यह प्रसन्नता की बात है कि अभी कुछ ही समय पूर्व इस दिशा में भारत सरकार द्वारा एक सराहनीय प्रयास किया गया है। भारत में ब्रेल लिपि से संबंधित सभी महत्त्वपूर्ण समस्याओं - विशेषतः ब्रेल-प्रशिक्षण-संबंधी समस्या - पर विचार करने और उनके समुचित समाधान के विषय में भारत सरकार के समक्ष अपनी सिफ़ारिशें प्रस्तुत करने के लिए एक राष्ट्रीय परिषद का गठन किया गया है जिसे 'भारतीय ब्रेल परिषद' ('Braille Council of India') की संज्ञा दी गई है। इस परिषद की पहली बैठक सितम्बर 2008 में देहरादून स्थित 'राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान' ('National Institute for the Visually Handicapped') में हुई। अपनी इस बैठक में 'परिषद' ने अनेक महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशें की हैं जो निम्नलिखित हैं :

(1) 2009 के शैक्षणिक सत्र से स्कूलों में पढ़ने वाले सभी दृष्टिहीन बच्चों को केवल ब्रेल पुस्तकों के माध्यम से ही शिक्षा दी जाए और इसके लिए कैसेट्स अथवा सी.डी. का प्रयोग न किया जाए। यह सिफ़ारिश निश्चय ही बहुत सराहनीय है, क्योंकि, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा श्रव्य उपकरणों द्वारा पूर्णतः संतोषजनक ढंग से प्राप्त नहीं की जा सकती; इसके लिए स्वयं पढ़ना तथा लिखना दोनों अनिवार्य हैं।

(2) देश के विभिन्न भागों से चौबीस विशेष विद्यालयों को 'आदर्श ब्रेल शिक्षा' के लिए चुना जाए और इन्हें ब्रेल पठन-पाठन तथा लेखन की सभी आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं। यह सिफ़ारिश भी अच्छी है, किंतु केवल चुने हुए विशेष विद्यालयों में ही नहीं, अपितु सभी विशेष विद्यालयों में ये सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

(3) 'भारतीय पुनर्वास परिषद' ('Rehabilitation Council of India') दृष्टिहीनों के विशेष शिक्षकों का पुनर्पंजीकरण करते समय ब्रेल पढ़ने-लिखने की परीक्षा को अनिवार्य बनाए और यह परीक्षा 'राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान' तथा

'भारतीय ब्रेल परिषद ' आयोजित करें। यह सिफ़ारिश संतोषप्रद ब्रेल प्रशिक्षण के लिए निश्चय ही बहुत महत्त्वपूर्ण है, किंतु मूल प्रश्न यह है कि क्या उक्त परीक्षा आयोजित करने वाले अधिकारी सचमुच और पूरी ईमानदारी से अपने इस विशेष कर्तव्य का पालन करेंगे। अनेक वर्षों तक परीक्षक के रूप में कार्य करने के बाद मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यह बात निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि परीक्षार्थियों को किसी भी उपाय द्वारा अधिकतम अंक दिलाने के लिए ब्रेल पढ़ने-लिखने की इस महत्त्वपूर्ण परीक्षा को लगभग निरर्थक बना दिया गया है। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त सिफ़ारिश का वास्तविक कार्यान्वयन संदिग्ध ही प्रतीत होता है।

(4) भारत की सभी भाषाओं के लिए प्रयुक्त भारती ब्रेल में आवश्यक संशोधनों तथा सुधारों पर गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श किया जाए। वस्तुत: यह सिफ़ारिश भी बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि 1951 में भारत सरकार द्वारा संपूर्ण देश के लिए 'भारती ब्रेल' की स्वीकृति के बाद अनके गंभीर समस्याएं उपस्थित हुई हैं जिनमें 'संकोचों ' तथा 'संक्षेपों ' के प्रयोग की समस्या विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 1986 में बनाए जाने के बाद पिछले 22 वर्षों में इन 'संकोच-संक्षेपों ' का प्रयोग बहुत कम हो पाया है। इनके निर्माण के लिए बहुत-से ब्रेल विशेषज्ञों ने अनेक वर्षों तक जो परिश्रम किया था और जो धनराशि ख़र्च की गई थी वह सारी लगभग व्यर्थ ही गई है। अभी तक दृष्टिहीनों को इनके निर्माण से कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं हो सका।

वस्तुत: यह बड़े दु:ख की बात है कि कुछ संस्थाओं के प्रभावशाली अधिकारियों ने इन 'संकोच-संक्षेपों ' के प्रयोग में जान-बूझकर सक्रिय रूप से बाधा डाली है। यदि इनका प्रयोग करने में कुछ कठिनाइयां आती हैं तो उन्हें निश्चय ही दूर किया जा सकता है, किंतु इन कठिनाइयों के कारण उन्हें पूरी तरह छोड़ देना कोई समझदारी की बात नहीं है। गत दो दशकों से भी अधिक समय तक निरंतर स्वयं इनका प्रयोग करने के पश्चात् मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से यह जानता हूँ कि इनके प्रयोग के कारण पढ़ने-लिखने में ऐसी कोई बड़ी कठिनाई नहीं आती जिसे इनको छोड़ देने के लिए प्रभावी तर्क के रूप में प्रस्तुत किया जा सके। इसके विपरीत वास्तविक स्थिति यह है कि इनके प्रयोग के फलस्वरूप पढ़ने-लिखने की गति काफ़ी बढ़ती है और कागज़ की भी कुछ बचत होती है जिसका भारत जैसे विकासशील देशों के लिए बहुत महत्त्व है। संभवत: इन्हीं कारणों से 1932 में निर्मित अंग्रेजी ब्रेल के विशेषज्ञों ने इसके 'संकोचों ' और 'संक्षेपों ' में गत 76 वर्षों में कुछ वृद्धि ही की है, उन्हें घटाया नहीं है। मुझे आशा है कि नवनिर्मित 'भारतीय ब्रेल परिषद ' ब्रेल की इस गंभीर समस्या पर विशेष रूप से ध्यान देगी।

(5) उक्त परिषद की एक सिफ़ारिश यह भी है कि इसे 'भारतीय ब्रेल प्राधिकरण ' ('Braille Authority of India') के रूप में एक स्वायत्त निकाय (Autonomous Body) बना दिया जाए। इस सिफ़ारिश का उद्देश्य शायद यह है कि स्वायत्त निकाय बन जाने पर इसे कुछ कानूनी अधिकार मिल जाएंगे और तब यह अपना कार्य अधिक प्रभावी ढंग से कर सकेगी। इस दृष्टि से यह सिफ़ारिश भी अच्छी है, किंतु एक बार फिर बड़ा प्रश्न वही है कि क्या तब इसके अधिकारी पूरी निष्ठा तथा ईमानदारी से अपने दायित्व निभाएंगे। हम तो यही आशा कर सकते हैं कि भारत में ब्रेल लिपि के उज्जवल तथा सुरक्षित भविष्य के लिए ये अधिकारी कम-से-कम अपनी ओर से निष्ठापूर्वक प्रयास अवश्य करेंगे।

यहां यह उल्लेखनीय है कि इस समय मूल ब्रेल संहिता की आधारभूत संरचना और विज्ञान तथा गणित के लिए ब्रेल लिपि के समुचित प्रयोग के संबंध में अमेरिका में गहन विचार-विमर्श हो रहा है। इस विचार-विमर्श के फलस्वरूप वहां ब्रेल से संबंधित दो क्रांतिकारी परिवर्तनों की गंभीरतापूर्वक चर्चा की जा रही है। पहला परिवर्तन छह बिंदुओं पर आधारित वर्तमान ब्रेल की मूल संरचना से संबंधित है और दूसरे परिवर्तन में एक ऐसी नवीन स्पर्श-प्रणाली के आविष्कार का दावा किया जा रहा है जिसे दृष्टिहीन तथा दृष्टिवान दोनों समान रूप से पढ़ सकते हैं। यहां हम इन दोनों प्रस्तावित क्रांतिकारी परिवर्तनों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे और यह भी देखेंगे कि इनका ब्रेल लिपि के भविष्य पर क्या तथा कितना प्रभाव पड़ सकता है।

इस समय अमेरिका के कुछ ब्रेल विशेषज्ञ बड़ी तीव्रता से यह अनुभव कर रहे हैं कि छह बिंदुओं पर आधारित ब्रेल आधुनिक कम्प्यूटर, गणित तथा विज्ञान के लिए अपर्याप्त है। उनका कथन है कि इस ब्रेल के केवल त्रेसठ चिह्नों से आधुनिक विज्ञान, गणित और कम्प्यूटर की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जा सकता। इसी कारण इन ब्रेल विशेषज्ञों ने वर्तमान छह बिंदु-ब्रेल के स्थान पर अष्ट बिंदु-ब्रेल (Eight-dot Braille) के निर्माण का सुझाव दिया है जिसमें 255 चिह्न उपलब्ध होंगे। उनका मत है कि यह अष्ट बिंदु-ब्रेल आधुनिक विज्ञान, कम्प्यूटर तथा गणित की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगी और इसमें उन सब चिह्नों को केवल एक ब्रेल सेल (Braillle Cell) द्वारा व्यक्त किया जा सकेगा जो वर्तमान ब्रेल के दो सेल्स (Cells) द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। उदाहरणार्थ, इस समय अंग्रेजी के प्रत्येक 'कैपिटल लैटर ' के लिए दो ब्रेल सेल्स का प्रयोग किया जाता है, किंतु 'अष्ट बिंदु-ब्रेल' में प्रत्येक 'कैपिटल लैटर' के लिए एक अलग ब्रेल चिह्न उपलब्ध होगा। इसी प्रकार कम्प्यूटर के अंग्रेजी 'की बोर्ड' (Key-Board) के सभी 95 चिह्नों के लिए भी इस नई ब्रेल में अलग-अलग चिह्न उपलब्ध कराए जा

सकेंगे।

इसके अतिरिक्त वर्तमान ब्रेल में आधुनिक उन्नत गणित और विज्ञान के लिए बहुत-से चिह्न नहीं हैं जो अष्ट बिंदु-ब्रेल में उपलब्ध होंगे। इतना ही नहीं, संसार की बहुत-सी भाषाओं की वर्णमाला के लिए वर्तमान ब्रेल के त्रेसठ चिह्न अपर्याप्त हैं, किंतु 255 चिह्न उपलब्ध कराने वाली नवीन ब्रेल में इस समस्या का भी सरलतापूर्वक समाधान हो जाएगा। इस प्रकार इन ब्रेल विशेषज्ञों का दावा है कि उनके द्वारा प्रस्तावित नवीन 'अष्ट बिंदु-ब्रेल' वर्तमान ब्रेल लिपि की तुलना में कहीं अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकेगी। ब्रेल लिपि से संबंधित दूसरा प्रस्तावित परिवर्तन तो उपर्युक्त परिवर्तन से भी अधिक क्रांतिकारी है। इस परिवर्तन का सुझाव देने वाले अमेरिका के एक ब्रेल विशेषज्ञ, जॉन ए. गार्डनर (John A. Gardner) ने 1993 में ब्रेल लिपि के स्थान पर दृष्टिहीनों के लिए एक नई प्रणाली का विचार प्रस्तुत किया था जिसे उन्होंने 'डॉट्सप्लस' ('DotsPlus') की संज्ञा दी थी। यह एक ऐसी स्पर्श-प्रणाली है जिसे दृष्टिहीन तथा दृष्टिवान दोनों पढ़ सकते हैं। गार्डनर का कथन है कि दृष्टिवान व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त सामान्य लिपि के अधिकतर अक्षरों की एक विशिष्ट आकृति होती है जिसे स्पर्श द्वारा भी उतनी ही सरलतापूर्वक पहचाना जा सकता है जितनी सरलता से दृष्टि द्वारा। इसका अर्थ यह है कि यदि सामान्य लिपि के अक्षरों की आकृति को मोटे कागज़ पर उभरे हुए बिंदुओं द्वारा मुद्रित किया जाए तो दृष्टिहीन तथा दृष्टिवान दोनों इन अक्षरों को सरलतापूर्वक पढ़ सकते हैं। अपनी इसी प्रणाली को गार्डनर ने 'डॉट्सप्लस' का नाम दिया है और उनका विचार है कि यदि इसे स्वीकार कर लिया जाए तो दृष्टिहीन तथा दृष्टिवान दोनों में इसके द्वारा अधिक सरलता एवं तेज़ गति से शैक्षणिक तथा व्यावसायिक संपर्क स्थापित हो सकता है। इसी कारण वे इसे ब्रेल की तुलना में अधिक सक्षम तथा उपयोगी प्रणाली मानते हैं।

इतना ही नहीं, गार्डनर के विचार में 'डॉट्सप्लस' द्वारा दृष्टिहीनों के लिए मानचित्रों, तालिकाओं, चार्ट्स, ग्राफ़िक्स, डायग्राम्स आदि अनेक ऐसे दस्तावेज़ों को मुद्रित किया जा सकता है जिन्हें ब्रेल में मुद्रित करना संभव नहीं है। इस प्रणाली में इन सब दस्तावेज़ों को मुद्रित करने के लिए एक विशेष प्रकार के आधुनिक मुद्रक (Printer) का प्रयोग किया जाता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि गार्डनर अपनी इस प्रणाली को ब्रेल लिपि से भिन्न मानते हुए भी इसे ब्रेल का ही विस्तार मानते हैं। शायद इसी लिए उन्होंने इसे 'डॉट्सप्लस' की संज्ञा दी है। वस्तुतः ब्रेल की भांति यह प्रणाली भी मूलतः बिंदुओं पर आधारित है और इसे लुई ब्रेल द्वारा निर्मित दस बिन्दु-प्रणाली का ही आधुनिक उन्नत रूप माना जा सकता है जिसकी विस्तृत चर्चा

हम पहले ही कर चुके हैं।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि उपर्युक्त दोनों प्रस्तावित परिवर्तनों का ब्रेल लिपि के भविष्य पर क्या और कितना प्रभाव पड़ेगा। इस प्रश्न का कोई स्पष्ट तथा निश्चित उत्तर देना संभव नहीं है, क्योंकि अभी तक ये दोनों प्रस्तावित परिवर्तन कुछ ब्रेल विशेषज्ञों के सुझाव मात्र हैं; इन्हें आधिकारिक रूप से किसी देश ने स्वीकार नहीं किया है। फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी द्वारा प्रस्तुत विशेष समस्याओं को ध्यान में रखते हुए ब्रेल लिपि की क्षमता तथा प्रभावशीलता में वृद्धि करने के लिए इन वैज्ञानिक उपायों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है। वस्तुतः इन विशेष समस्याओं का संतोषप्रद समाधान कर के ही ब्रेल लिपि के भविष्य को पूर्णतः सुरक्षित बनाया जा सकता है।

मेरे विचार में ब्रेल लिपि के भविष्य को सुरक्षित तथा उज्जवल बनाए रखने का सब से बड़ा उपाय यही है कि हम दृष्टिहीन व्यक्ति अपने जीवन में इसका यथासंभव अधिकतम प्रयोग करें और प्रारंभ से ही सभी दृष्टिहीन बच्चों को इसी के माध्यम से पढ़ने-लिखने का समुचित प्रशिक्षण दें। यदि हम शिक्षा, प्रशिक्षण, रोज़गार, खेल, गृह-व्यवस्था आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार ब्रेल लिपि का प्रयोग करें, यदि हम दृष्टिहीन बच्चों को पाठ्य पुस्तकें और वयस्क दृष्टिहीनों को ज्ञानवर्धक एवं मनोरंजक साहित्य ब्रेल में उपलब्ध करा सकें तो निश्चय ही इस लिपि का भविष्य सुरक्षित तथा उज्जवल बना रहेगा। हमें यह याद रखना चाहिए कि दृष्टिवान व्यक्तियों के जीवन में जो महत्त्व सामान्य दृष्टिगत लिपि का है, उस से भी कहीं अधिक महत्त्व दृष्टिहीनों के लिए ब्रेल लिपि का है, अतः जब तक उनके मन में शिक्षा तथा रोज़गार प्राप्त कर के आत्म-निर्भर होने की इच्छा बनी रहेगी, तब तक संसार में ब्रेल लिपि भी सदा अमर रहेगी।

लुई ब्रेल के प्रति हमारी सब से बड़ी श्रद्धांजलि यही होगी कि हम अपने जीवन में उनके क्रांतिकारी आविष्कार, ब्रेल लिपि का अधिकतम प्रयोग करें और यह सदा याद रखें कि उन्होंने ही हमारे लिए शताब्दियों से बंद ज्ञान के द्वार खोले हैं।

•

सहायक पुस्तकें

हिन्दी में:

1. ऑल इंडिया कन्फैडरेशन ऑफ़ दि ब्लाइंड (सम्पादक तथा प्रकाशक) 'शिक्षक-प्रशिक्षण लेखमाला', रोहिणी, दिल्ली,2004। (ब्रेल संस्करण उपलब्ध)।
2. श्रीमती स्वर्ण अहूजा, 'दृष्टिहीनों का शिक्षण तथा पुनर्वसन - प्रारंभ व विकास', नेशनल एसोसिएशन फ़ॉर दि ब्लाइंड, मुम्बई, 1995।
3. श्री विरेंद्र सिंह, 'हिंदी ब्रेल ज्ञान सरोवर', राष्ट्रीय दृष्टिबाधितार्थ संस्थान, देहरादून, 2003।
4. डॉ. वेद प्रकाश वर्मा, 'लुई ब्रेल - व्यक्तितत्व और कृतित्व', रोटरी क्लब, दिल्ली नार्थ, 1981। (ब्रेल संस्करण उपलब्ध)

In English:

1. C. Michael Mellor, "Louis Braille: a Touch of Genius" National Braille Press, 88, Saint Stephen Street, Boston, MA 02115, U.S.A., 2006. (Braille edition available.)
2. Judith M. Dixon, (Editor), "Braille into the Next Millennium", National Library Service for the Blind and Physically Handicapped and Friends of Libraries for Blind and Physically Handicapped Individuals in North America, Washington, D.C., U.S.A., 2000.
3. Norman Wymer, 'Louis Braille", Oxford University Press and the Royal National Institute for the Blind, London, U.K., 1960. (Braille edition available.)
4. Lal Advani, "An Overview of Braille Development in India" National Institute for the Visually Handicapped, Dehradun, 1991. (Braille edition available).
5. K.N.K. Jussawala, "Louis Braille and All That", National Association for the Blind, Mumbai, 1959.
6. Pierre Henri, "The Work and Life of Louis Braille", Translated from French into English by Elizabeth Whitehead, Royal National Institute for the Blind, London, 1952. (Braille edition available)

परिशिष्ट-1

फ्रैंच ब्रेल वर्णमाला (FRENCH BRAILLE ALPHABET)

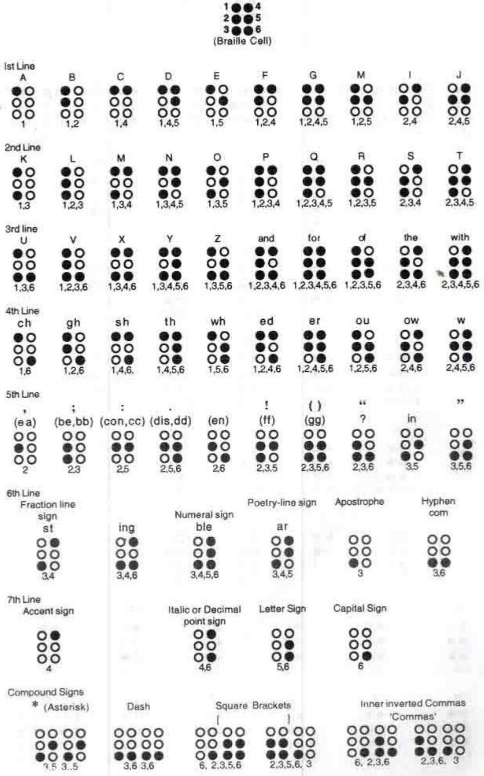

परिशिष्ट-2
हिन्दी ब्रेल वर्णमाला

1 ● ● 4
2 ● ● 5
3 ● ● 6
(ब्रेल सेल)

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः	अँ
1	3,4,5	2,4	3,5	1,3,6	1,2,5,6	4,1,2,3,5	1,5	3,4	1,3,5	2,4,6	5,6	6	3

क	ख	ग	घ	ङ
1,3	4,6	1,2,4,5	1,2,6	3,4,6

च	छ	ज	झ	ञ
1,4	1,6	2,4,5	3,5,6	2,5

ट	ठ	ड	ढ	ण
2,3,4,5,6	2,4,5,6	1,2,4,6	1,2,3,4,5,6	3,4,5,6

त	थ	द	ध	न
2,3,4,5	1,4,5,6	1,4,5	2,3,4,6	1,3,4,5

प	फ	ब	भ	म
1,2,3,4	2,3,5	1,2	4,5	1,3,4

य	र	ल	व	श	ष
1,3,4,5,6	1,2,3,5	1,2,3	1,2,3,6	1,4,6	1,2,3,4,6

स	ह	क्ष	ज्ञ	ड़	ढ़
2,3,4	1,2,5	1,2,3,4,5	1,5,6	1,2,4,5,6	5, 1,2,4,5,6

इस पुस्तक का उद्देश्य लुई ब्रेल के जीवन और उनके क्रांतिकारी आविष्कार, 'ब्रेल लिपि' के सभी प्रमुख आयामों को सरल एवं रोचक भाषा-शैली में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना है। संपूर्ण पुस्तक को दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में लुई ब्रेल के समय की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का उल्लेख करने के पश्चात् उनके जीवन के सभी महत्त्वपूर्ण पक्षों - शैशव, बाल्यावस्था, शिक्षा, संगीत-साधना तथा अध्यापन-कार्य - और उनके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन किया गया है। इसी भाग के अंत में लुई ब्रेल के महाप्रयाण तथा उनके प्रति विश्वव्यापी विनम्र श्रद्धांजलि की भी संक्षिप्त चर्चा की गई है।

पुस्तक के दूसरे भाग में ब्रेल लिपि की रचना, उसकी मान्यता के लिए संघर्ष तथा सारे संसार में उसके प्रसार और प्रचार का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त भारती ब्रेल के विकास तथा उसकी मुख्य समस्याओं और ब्रेल लिपि के वैश्विक स्वरूप की विवेचना भी इसी भाग में की गई है। अंत में ब्रेल लिपि के भविष्य से संबंधित कुछ प्रमुख चुनौतियों तथा समस्याओं का विस्तृत विवेचन किया गया है और संसार में इस लिपि के भविष्य को उज्ज्वल एवं सुरक्षित बनाए रखने के लिए कुछ उपाय भी बताए गए हैं।

इस पुस्तक में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी भी दी गई है जिन्हें अभी तक हिंदी भाषा में प्रस्तुत नहीं किया गया। इन तथ्यों में 'दस बिंदु-प्रणाली', 'राफ़ीग्राफ़', 'अष्ट बिंदु-ब्रेल', 'डॉट्सप्लस' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

जहां तक हमें ज्ञात है, लुई ब्रेल के जीवन तथा उनकी ब्रेल लिपि से संबंधित नवीनतम अनुसंधानों पर आधारित ऐसी अन्य कोई पुस्तक हिंदी में अभी तक उपलब्ध नहीं है। हमें आशा है कि यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक केवल दृष्टिवान व्यक्तियों के लिए ही नहीं, अपितु दृष्टिहीनों के लिए भी बहुत उपयोगी, रोचक तथा ज्ञानवर्धक सिद्ध हो सकेगी।

प्रकाशक

ऑल इंडिया कन्फैडरेशन ऑफ दि ब्लाइंड
सैक्टर - 5, रोहिणी, दिल्ली-110085.
फोन : 011-27054082 फैक्स : 011-27050915
E-mail : aicbdelhi@yahoo.com